मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 104 ● वर्ष 11, अंक 11 ● जनवरी 2022 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

कश्मीर में भारतीय राज्य का ख़ूनी खेल और मोदी सरकार की धूर्त साम्प्रदायिक चालें 7

धर्मान्धता और मज़हबी उन्माद के ख़िलाफ़ मेहनतकशों को उठ खड़े होना होगा! 8

चीले में बोरिच की जीत पर भारत के सुधारवादी वाम बुद्धिजीवी इतने ख़ुश क्यों हैं? 11

पाँच राज्यों में आगामी विधानसभा चुनावों के मद्देनज़र क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग का नारा

साम्प्रदायिक फ़ासीवाद द्वारा फैलाये जा रहे धार्मिक उन्माद में मत बहो!

'मन्दिर-मस्जिद' पर आधारित धार्मिक कट्टरपन्थी प्रचार का पूर्ण बहिष्कार करो!

अपने असली वर्गीय मसलों को पहचानो और मेहनतकश आबादी की वर्गीय एकजुटता क़ायम करो!

पाँच राज्यों, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, पंजाब, गोआ और मणिपुर में फ़रवरी-मार्च में होने वाले विधानसभा चुनावों के नज़दीक आने के साथ ही संघ परिवार और उसके चुनावी चेहरे भाजपा ने साम्प्रदायिकता की लहर फैलाने का काम शुरू कर दिया है। जहाँ एक ओर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ मन्दिर राजनीति की नये सिरे से शुरुआत कर काशी विश्वनाथ और मथुरा में मन्दिर निर्माण का मसला उछाल रहे हैं, वहीं दूसरी ओर हरिद्वार में धार्मिक कट्टरपन्थियों द्वारा किये गये कार्यक्रम में सीधे मुसलमानों के नरसंहार का आह्वान करना भी संघ परिवार की रणनीति का ही एक अंग है और धार्मिक कट्टरपन्थ और साम्प्रदायिकता की लहर को उभाड़ने का ही एक उपकरण था। इसका मक़सद है आने वाले चुनावों में वोटों का धार्मिक ध्रुवीकरण। अन्य कई राज्यों में भी विधानसभा चुनाव हैं, लेकिन उत्तर प्रदेश का चुनाव सभी पूँजीवादी दलों के लिए सबसे अहम है क्योंकि 2024 के लोकसभा चुनावों के मद्देनज़र इसका विशेष महत्व है।

नये सिरे से 'मन्दिर-मस्जिद' व 'हिन्दू-मुसलमान' की राजनीति भाजपा इसलिए कर रही है क्योंकि

सम्पादक मण्डल

पिछले पाँच वर्षों में योगी सरकार हर मोर्चे पर नाकामयाब रही है और व्यापक मेहनतकश जनता के भीतर उसके प्रति असन्तोष और रोष की भावना पैदा हो रही है। कोरोना महामारी के दौरान जिस प्रकार प्रदेश में मौत का ताण्डव हुआ, जिस प्रकार ऑक्सीज़न की कमी से मौतें हुईं, जिस प्रकार श्मशान में अन्तिम संस्कार के लिए लाइनें लगीं और जिस प्रकार ऑक्सीजन व दवाओं की कमी की ओर इंगित करने वाले डॉक्टरों, अस्पतालों व नर्सिंग होमों पर योगी सरकार ने गुण्डई करते हुए कार्रवाई की और जिस प्रकार लाखों मौतों को छिपाने का काम किया गया, उसे प्रदेश की मेहनतकश जनता अभी भूली नहीं है। अपने घर व आस-पड़ोस में हुई त्रासद मौतों की दुख-भरी यादें भी अभी जनता के ज़ेहन में ताज़ा हैं। यहाँ तक कि उच्च मध्य वर्ग व उच्च वर्ग तक के कुछ हिस्सों में इसके कारण असन्तोष है।

पूरे देश में और पूरे प्रदेश में बेरोज़गारी और महँगाई का जो आलम है, उसने एक ओर व्यापक आम युवा आबादी में भयंकर गुस्सा पैदा किया है, वहीं आम मेहनतकश आबादी को भी असन्तोष से भर दिया है। सरकारी नौकरियाँ नहीं के बराबर हैं और जो हैं वे ख़त्म की जा रही हैं। सरकारी नौकरियों के लिए फॉर्म ही नहीं निकलते, फॉर्म निकलते हैं तो परीक्षाएँ नहीं होती हैं, परीक्षाएँ होती हैं तो परिणाम नहीं निकलते, परिणाम निकलते हैं तो नियुक्तियाँ नहीं होती हैं। फॉर्म बेचकर ही सरकार करोड़ों कमाती है और बेरोज़गार और मेहनतकश युवाओं को ठगती है। कई परीक्षाओं के प्रश्नपत्र सरकारी तंत्र, नेताशाही व नौकरशाही की मिलीभगत से लीक हो जाते हैं और मसला सामने आने पर

(पेज 9 पर जारी)

पंजाब में केजरीवाल और चन्नी में "आम आदमी" बनने की हास्यास्पद होड़

शुभम

आगामी पंजाब विधानसभा चुनावों को समीप आते देख पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियों के बीच हलचल शुरू हो गयी है। इन सभी पार्टियों के नेता-मंत्री पाँच साल की शीत निद्रा से बाहर निकल आये हैं और एक के बाद एक बड़े एलान कर रहे हैं। कुछ ऐसे ही एलानों के बीच पंजाब के नये मुख्यमंत्री चरणजीत सिंह चन्नी और दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविन्द केजरीवाल के बीच ख़ुद को 'आम आदमी' साबित करने की होड़-सी मच गयी। नवम्बर महीने से ही केजरीवाल पंजाब के अलग-अलग शहरों के चक्कर लगा चुके हैं। इसी दौरान लुधियाना शहर में रखे दो अलग-अलग कार्यक्रमों के दौरान दोनों ही रिक्शा चालकों और रेहड़ीवालों के बीच पहुँच बनाते दिखे। जहाँ चन्नी ने रिक्शा चालकों के साथ चाय पी वहीं केजरीवाल उनके साथ खाना खाते नज़र आये। चुनावों से पहले ऐसी गतिविधियाँ अक्सर ही देखने को मिल जाती हैं, पर ये गतिविधियाँ राजनीतिक करतबों के अलावा और कुछ नहीं होती हैं। ये दोनों नेता और इनकी पार्टियाँ कितनी 'आम' हैं आइए जान लेते हैं।

2017 में राज्य में बेरोज़गारी, ग़रीब किसानों का संकट, गिरती अर्थव्यवस्था और दलितों के ख़िलाफ़ बढ़ते अपराध जैसे मुद्दों को केन्द्र में रखकर कांग्रेस उस समय शासन कर रहे अकाली दल और भाजपा के गठबन्धन को हराकर सत्ता में आयी थी। ग़ौरतलब है कि इनमें से किसी भी मुद्दे पर सरकार कोई ठोस क़दम नहीं उठा पायी और कुछ मामलों में स्थिति और भी बदतर हो गयी।

कांग्रेस सरकार ने 'घर-घर नौकरी' स्कीम के तहत हर घर में एक नौकरी देने का जुमला दिया था। 10 लाख से भी ज़्यादा युवाओं ने नौकरी पाने के लिए पंजीकरण तो किया पर सरकार कितनों को नौकरी दिला पायी इसके आँकड़े कभी सामने ही नहीं आये। नये रोज़गार पैदा करना तो दूर सरकारी विभागों में पदों को भरने में भी सरकार असमर्थ रही है। 2020 में एक आरटीआई की अर्ज़ी के जवाब में यह बात सामने आयी कि पंजाब और चण्डीगढ़ के प्राइमरी स्कूलों में अध्यापकों के 10 प्रतिशत से ज़्यादा पद ख़ाली पड़े हैं। ऐसे ही कई और सरकारी संस्थानों में हज़ारों की संख्या में पद ख़ाली पड़े हैं जिन्हें सरकार अपने साढ़े चार साल के कार्यकाल में नहीं भर पायी। साल 2017 से 2021 तक पंजाब में बेरोज़गारी दर औसतन क्रमशः 5.61 प्रतिशत, 8.15 प्रतिशत, 10.3 प्रतिशत, 10.98 प्रतिशत, 7.1 प्रतिशत रही है। 2019 और 2020 में पंजाब की बेरोज़गारी दर भारत की औसत बेरोज़गारी दर से ऊपर थी और पंजाब भारत के पाँच सबसे अधिक बेरोज़गार प्रदेशों की सूची में रहा।

इससे अधिक हास्यास्पद और क्या हो सकता है कि अपने पूरे शासनकाल में हुए अलग-अलग प्रदर्शनों के दौरान प्रदर्शनकारियों और जायज़ माँग उठा रही जनता पर लाठियाँ बरसाने वाले ये 'आम आदमी', चुनाव नज़दीक

(पेज 6 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

नये साल के पहले दिन से ही जारी है पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा मज़दूरों का दमन

पहली जनवरी की सुबह तमिलनाडु के विरुधुनगर ज़िले के पास पटाखा बनाने वाली एक फ़ैक्टरी में ज़बर्दस्त आग लग गयी। जानकारी के मुताबिक़, इस हादसे में अब तक पाँच मज़दूरों की मौत हुई है जबकि दस से ज़्यादा मज़दूर ज़ख्मी हैं। इस इलाक़े में यह कोई पहला हादसा नहीं है, बीते साल फ़रवरी में पटाखे के कारख़ाने में आग लगी थी, जिसमें 16 मज़दूरों की मौत हुई थी।

आख़िर लगातार पूरे देश के कारख़ानों में हो रही इन मौतों का ज़िम्मेदार कौन है? इन मौतों के दोषी कारख़ानों के मालिक हैं, जो अपने मुनाफ़े को बचाने के लिए हमारी सुरक्षा के इन्तज़ाम पर सौ रुपये तक भी ख़र्च नहीं करते हैं। अपने दाँतों से सिक्के दबाकर बैठे इन मालिकों की हवस ही हर रोज़ मज़दूरों की जान लेती है। और साथ ही श्रम विभाग और राज्य सरकार भी उतनी ही ज़िम्मेदार है क्योंकि बिना इनकी मिलीभगत के ये मालिक ऐसी हरकत नहीं कर सकते और इन पर किसी प्रकार की कार्रवाई भी नहीं होती है। इस बात को समझने के लिए हमें श्रम क़ानूनों और उनको लागू करने की प्रक्रिया को देख लेना चाहिए।

कारख़ानों में सुरक्षा के इन्तज़ामों पर ग़ौर करें तो स्पष्ट होगा कि ये कारख़ाने रोज़-रोज़ मज़दूरों की जान ले रहे हैं। कारख़ानों में बुनियादी दस्तानों से लेकर जूते तक नहीं दिये जाते और केमिकल वाले काम भी मज़दूर नंगे हाथों से ही करते हैं। फ़ैक्टरियों में हवा की निकासी तक के लिए कोई उपकरण नहीं लगाये जाते, जिस वजह से हमेशा धूल-मिट्टी और उत्पादों की गन्ध के बीच मज़दूर काम करते हैं। इस कारण जवानी में ही मज़दूरों को बूढ़ा बना दिया जाता है और दस-बीस साल काम करने के बाद ज़्यादातर मज़दूर ऐसे मिलेंगे जिन्हें कारख़ानों में बदतर हालात होने के कारण फेफड़ों से लेकर चमड़ी की या कोई न कोई अन्य बीमारी होती है।

दूसरी तरफ़ मोदी सरकार इन मौतों को भी जायज़ ठहराने के लिए क़ानूनी अमलीजामा पहनाने को तैयार है। नयी श्रम संहिता के अनुसार तो फ़ैक्टरी इंस्पेक्टर द्वारा फ़ैक्टरी का निरीक्षण करना बाध्यकारी नहीं रह जायेगा। अब सिर्फ़ मालिक यह कह दे कि उनके कारख़ाने में 10 से कम मज़दूर काम करते हैं और फ़ैक्टरी में सब कुछ ठीक है तो उसकी बात मान ली जायेगी! मतलब अब चोर ख़ुद अपने बारे में फ़ैसला सुनायेगा! अब कभी भी किसी मज़दूर को बिना वजह बताये काम से बाहर निकाला जा सकेगा और इसके ख़िलाफ़ श्रम विभाग में शिकायत भी नहीं की जा सकती है। आज हम जिन सुरक्षा के इन्तज़ामों की माँग कर रहे हैं, वे भी हमसे क़ानूनी तौर पर छीनने की तैयारी है। केन्द्र में बैठी मोदी सरकार जो मज़दूरों की घोषित तौर पर दुश्मन है, जो कि सिर्फ़ जुमलेबाज़ी कर पूँजीपतियों की सेवा करती है और इस सब से जनता का ध्यान हटाने के लिए जाति-धर्म के नाम पर बाँटकर आपस में लड़ाने में लगी हुई है। इसलिए इन मौतों के लिए यह समूची मुनाफ़ाख़ोर व्यवस्था ज़िम्मेदार है, जो कारख़ानेदारों के मुनाफ़े को बचाने के लिए प्रतिबद्ध है। ऐसे में मज़दूरों की माँग है कि :

– पूरे देश के कारख़ानों में सुरक्षा के पुख़्ता इन्तज़ाम किये जायें व श्रम क़ानून तत्काल लागू किये जायें।

– दोषी मालिकों को कड़ी से कड़ी सज़ा दी जाये।

– मारे गये मज़दूरों के परिवार को 50 लाख रुपये मुआवज़ा दिया जाये।

– श्रम क़ानूनों को बहाल किया जाये।

– संवाददाता

क्या आप मज़दूर बिगुल के रिपोर्टर बनेंगे?

क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों के जीवन, उनके काम के हालात, उनकी समस्याओं और संघर्षों के बारे में आप जैसे देश के करोड़ों मज़दूरों-कर्मचारियों को और देश के आम नागरिकों को पता चले? क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों की ख़बरें जो हर मीडिया से ग़ायब रहती हैं, वे मज़दूरों के अपने अख़बार के ज़रिए लोगों तक पहुँचें?

तो क़लम उठाइए और अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव हमें भेजिए।

'मज़दूर बिगुल' आपका अपना अख़बार है। यह उन तमाम मेहनतकशों की आवाज़ है जिनकी बात इस देश के दर्जनों टीवी चैनलों और हज़ारों अख़बारों में कहीं सुनायी नहीं देती, मगर जिनकी मेहनत के बग़ैर यह देश एक दिन भी चल नहीं सकता।

आपको अगर टाइप करने में समस्या है तो काग़ज़ पर लिखकर उसकी फ़ोटो लेकर हमें व्हाट्सऐप पर भेज दीजिए। आप फ़ोन पर, व्हाट्सऐप पर या बिगुल के साथियों से मिलकर भी उन्हें जानकारियाँ दे सकते हैं। इसके बारे में कुछ भी जानने के लिए हमसे सम्पर्क करिए या अपने इलाक़े में 'मज़दूर बिगुल' बाँटने वाले साथियों से बात करिए।

आप इन तरीक़ों से अपनी बात हमारे तक पहुँचा सकते हैं :

डाक से भेजने का पता : **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**

ईमेल से भेजने का पता : **bigulakhbar@gmail.com**

व्हाट्सऐप नम्बर : 9721481546

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं : www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :

फ़ोन : 0522-4108495, 9721481546
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 9721481546
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 8860792320
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 5/- रुपये वार्षिक – 70/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 2000/- रुपये

कलायत बीडीपीओ कार्यालय में भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ मनरेगा यूनियन का प्रदर्शन

21 दिसम्बर। कलायत ब्लॉक में क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन के बैनर तले मनरेगा मज़दूरों ने बीडीपीओ कार्यालय में फैले भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ विरोध प्रदर्शन किया गया। यूनियन ने एसडीएम के मार्फ़त ज़िला मुख्य अधिकारी को अपनी माँगों का ज्ञापन सौंपा। यूनियन के प्रभारी रमन ने बताया कि गाँव चौशाला, सिमला, रामगढ़ व आसपास गाँव में मनरेगा मज़दूर विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त हैं। यूनियन द्वारा पहले भी मनरेगा मज़दूरों के माँगपत्रक बीडीपीओ कार्यालय में दिये गये हैं लेकिन लम्बा समय बीतने के बाद भी विभाग द्वारा इस समस्या का हल नहीं किया गया है। साथ ही कलायत क्षेत्र में विभाग की नये जॉब कार्ड व गाँव में सभी को नियमित काम को लेकर भी कोई स्पष्ट योजना नहीं है। जिसके कारण बहुत-से गाँव के मनरेगा के इच्छुक मज़दूर नये जॉब कार्ड से वंचित हैं। साथ ही यूनियन की प्रमुख माँगें हैं कि विभाग द्वारा 16 दिवसीय काम का मस्टररोल निकाला जाये व मनरेगा का काम सुचारू रूप से चालू करवाया जाये। दूसरा, कलायत में मनरेगा से सम्बन्धित अधिकारी सिर्फ़ 2 दिन आते हैं उनकी ड्यूटी परमानेण्ट कलायत ब्लॉक में की जाये। यूनियन ने एक सप्ताह का समय दिया है अगर हमारी जायज़ माँगों पर कार्रवाई नहीं होती है तो हम बीडीपीओ कार्यालय में अनिश्चितकालीन धरना देंगे।

आगे चौशाला गाँव की यूनियन सदस्य कविता ने बताया कि मनरेगा यूनियन का अनुभव है कि कलायत तहसील में मज़दूरों को साल में मुश्किल से 25-30 दिन ही काम मिलता है। यही आँकड़े पूरे हरियाणा और साथ ही देश स्तर पर सही हैं। साथ ही मनरेगा में भ्रष्टाचार का एक मुख्य कारण मनरेगा की सूची में शामिल किये जाते हैं जो मनरेगा में काम करने नहीं आते। उनका सिर्फ़ काग़ज़ों में नाम चलता है और जो पैसा आता है उसका बड़ा हिस्सा अधिकारियों तथा थोड़ा-बहुत हिस्सा

ऑफ़िस के अधिकारियों की गाँव के कुछ विशेष मेटों के साथ साँठ-गाँठ होती है जिसके कारण मनरेगा का ज़्यादातर काम उन गाँवों को मिलना शुरू हो जाता है जिनके मेटों के साथ उनका गठजोड़ बनता है। मनरेगा में जो आबादी काम करती है उसके नाम के साथ-साथ ऐसे नाम भी वर्करों उन फ़र्ज़ी "मज़दूरों" की जेब में चला जाता है और यह सिलसिला जारी रहता है। एक ओर मज़दूर काम के लिए मनरेगा विभाग के चक्कर लगाते रहते हैं और दूसरी ओर मनरेगा का जो बजट मज़दूरों के लिए तय हुआ है वह भ्रष्ट अधिकारियों और मेटों की जेबों में जाता रहता है।

यूनियन के अजय ने बताया कि इस भ्रष्टाचार के ऊपर रोक लगाना वैसे तो किसी एक आदमी के बस की बात नहीं मगर इसको रोकने के लिए क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन के साथी लगातार गाँव-गाँव में मनरेगा मज़दूरों की कमेटियों का गठन कर रहे हैं और इन कमेटियों में जो मज़दूर शामिल हैं उनको मनरेगा विभाग से जुड़े हुए काग़ज़ी काम भी सिखाये जाते हैं जैसे डिमाण्ड भरना, मस्टररोल भरना, यह पता करना कि कितने लोगों का काम आया है, कितने लोग काम पर जाते हैं, किसी की फ़र्ज़ी हाज़िरी तो नहीं भरी जा रही, आदि। इन सभी कामों के लिए प्रशिक्षित करने का काम भी किया जाता है और जो भी काग़ज़ी काम होता है उसको व्हाट्सएप के माध्यम से हर मज़दूर के सम्पर्क में लेकर आने का काम भी किया जाता है। ऐसा करने से मज़दूरों में आत्मविश्वास बढ़ता है और साथ ही साथ हर मज़दूर काम के प्रति निगरानी और ज़िम्मेदारी को भी समझना शुरू कर देता है।

मनरेगा मज़दूरों के प्रदर्शन को समर्थन दे रही भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के साथी प्रवीन ने कहा कि देश-दुनिया की सारी वस्तुओं का निर्माण करने वाली मेहतनकश आबादी को वेतन-भत्ते की लड़ाई को सत्ता की लड़ाई तक पहुँचना होगा। जिसके लिए मज़दूरों में राजनीतिक चेतना का विकास करना होगा हमें उनके बीच क्रान्तिकारियों के विचारों का प्रचार-प्रसार और राजनीतिक पाठशालाओं का आयोजन करना होगा। लेनिन के शब्दों में कहें तो यूनियन मज़दूरों की कम्युनिज़्म पाठशाला होती है जहाँ पर एक मज़दूर, मज़दूर चेतना से सर्वहारा चेतना की तरफ़ बढ़ता है और अपनी वर्ग एकजुटता को अच्छे से समझता है। प्रदर्शन के मौक़े पर समर्थन के लिए आये नौजवान भारत सभा के साथी अजय और अमित द्वारा क्रान्तिकारी गीतों की प्रस्तुति की गयी।

– बिगुल संवाददाता

भोपाल में सीवर की सफ़ाई करते हुए दो कर्मियों की मौत

आशु

बीते 13 दिसम्बर को जब प्रधानमंत्री मोदी बनारस कोरीडोर के उद्घाटन के तमाशे के दौरान भवन निर्माण मज़दूरों के बीच लंच कर रहे थे, लगभग उसी वक़्त भोपाल शहर में एक गटर की सफ़ाई के दौरान दो सफ़ाईकर्मी इस निर्दयी पूँजीवादी व्यवस्था की भेंट चढ़ गये। ये दोनों सफ़ाईकर्मी भोपाल नगर निगम के अन्तर्गत गुजरात की एक निजी कम्पनी के कच्चे कर्मचारी थे। सफ़ाई कम्पनी ने बिना किसी सुरक्षा उपकरणों के इन दोनों मज़दूरों को एक 20 फ़ीट गहरे सीवर में उतार दिया। सीवर की गहराई में जाने के बाद दोनों मज़दूरों का दम घुटने लगा और कुछ देर बात ही उनकी मौत हो गयी। घण्टों मशक़्क़त के बाद दूसरे सफ़ाईकर्मियों ने जान जोखिम में डालकर अपने साथियों की लाशें निकाली। लेकिन इन ठण्डी हत्याओं के बाद भी ना तो कम्पनी पर कोई कार्रवाई हुई, ना ही भोपाल नगर निगम ने कोई ज़िम्मेदारी ली। यूँ तो भोपाल भारत के साफ़-सुथरे शहरों में सातवें नम्बर पर आता है, लेकिन सच्चाई यह है कि इस साफ़-सफ़ाई की बुनियाद में ये सफ़ाईकर्मी बेहद नारकीय हालात में काम करने को मजबूर हैं।

असल में भोपाल में हुई घटना देशभर में सफ़ाईकर्मियों के साथ होने वाली रोज़मर्रा की घटना बनती जा रही है। हम अपने आस-पास रोज़ाना ऐसे मज़दूरों को देखते हैं जो गन्दगी से भरे गटरों-मैनहोलों आदि में बिना किसी सुरक्षा उपकरण के उतरते हैं, वह भी महज़ 250-300 रुपये की दिहाड़ी कमाने के लिए। वहीं सफ़ाई के पेशे में लगे ज़्यादातर मज़दूर पेशागत बीमारियों से जूझते रहते हैं। वे हर समय कार्बन मोनोऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फ़ाइड और मीथेन जैसी ज़हरीली गैसों के सीधे सम्पर्क में रहने से कई प्रकार की साँस की बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। साथ ही दस्त, टाइफ़ाइड और हेपीटाइटिस-बी इन मज़दूरों में पाये जाने वाले सामान्य रोग हैं। वहीं बिना सुरक्षा उपकरण के ये मज़दूर गटर में माचिस की तीली जलाकर ज़हरीली गैस का अन्दाज़ा लगाते हैं, अगर तीली बुझ जाती है तो मतलब गटर में ज़हरीली गैस है या गटर से किसी कॉकरोच के आने का इन्तज़ार करते हैं अगर कॉकरोच

निकलता है तो मान लेते हैं कि गटर में ज़हरीली गैस नहीं है।

यूँ तो मोदी जी नौटंकी करने के लिए सफ़ाईकर्मियों के चरण धोने का काम करते हैं, स्वच्छ भारत अभियान के तमाशों में तमाम खाये-पिये-अघाये-मुटियाये भाजपाई हाथों में झाड़ू उठाकर ढोंग करते हुए फ़ोटो खिंचवा लेंगे किन्तु सफ़ाईकर्मियों के बदतर हालात की किसी को कोई फ़िक्र नहीं है। वहीं ख़ुद को दलितों का मसीहा कहने वाले रामदास अठावले, मायावती जैसे नेतागण भी इन असल मुद्दों पर चुप्पी मारे बैठे रहते हैं।

आज दुनिया के तमाम देशों में सीवर को सक्शन मशीन के ज़रिए साफ़ किया जाता है और ऐसा ख़ुद हमारे देश के कुछ कोनों में किया गया है। लेकिन अधिकतम जगह सफ़ाई कर्मचारियों को ख़ुद सीवर में उतरना पड़ता है। बेशर्मी और नंगई के साथ दुनियाभर की नौटंकी करने और झूठ बोलने वाली मोदी सरकार को सफ़ाई कर्मचारियों की ज़िन्दगी से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता है। यह बात भी ग़ौर करने लायक़ है कि हमेशा सीमा पर सैनिकों की मौत की दुहाई देने वाली पार्टी भाजपा इस तथ्य पर चुपाई मारकर बैठी है कि भारत में सीमा पर साल में जितने सैनिकों की मौत होती है, उससे ज़्यादा मौतें सफ़ाई कर्मचारियों की सीवर साफ़ करते हुए होती हैं।

मज़दूर वर्ग के इस सबसे अधिक दमित व शोषित हिस्से की बहुसंख्या दलित है। आज मज़दूर वर्ग के भीतर जाति की दीवारों को तोड़ना और जातिगत श्रेष्ठतावाद की सोच को नष्ट करना बेहद ज़रूरी है। इसके बिना भारत का मज़दूर वर्ग कभी भी अपने दुश्मन पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ पहले ख़ुद को और फिर समूची मेहनतकश जनता को एकजुट नहीं कर सकता है। मज़दूर वर्ग यदि किसी भी रूप में दमन, उत्पीड़न या शोषण को मान्यता देता है, तो वह स्वयं भी हमेशा पूँजीपति वर्ग के हाथों शोषण और दमन का शिकार होने के लिए शापित होता है। मज़दूर वर्ग का सच्चा क्रान्तिकारी चरित्र इसी बात में निहित है कि वह केवल अपने शोषण व दमन के विरुद्ध नहीं बल्कि औरतों, दलितों, दमित राष्ट्रों व राष्ट्रीयताओं सभी के दमन और शोषण के विरुद्ध लड़ता है, समूची मानवता को पूँजीवाद-साम्राज्यवाद के जुए से मुक्त करने के लिए लड़ता है। इसलिए आज सफ़ाई कर्मचारियों और मज़दूरों की आवाज़ को उठाने में भी समूचे मज़दूर वर्ग को ही साथ आना होगा, अपनी एकजुटता और संगठन को फ़ौलादी बनाना होगा और इस शोषणकारी-दमनकारी निज़ाम को चुनौती देनी होगी।

हरियाणा में आँगनबाड़ी कर्मियों का संघर्ष

लम्बी लड़ाई और साझे संघर्ष की तैयारी के लिए आह्वान

24 नवम्बर को हरियाणा के विभिन्न ज़िलों से आँगनबाड़ी वर्कर्स और हेल्पर्स यूनियन ने पंचकुला ज़िले में स्थित 'महिला एवं बाल विकास मंत्रालय' का घेराव किया। पहले दिन घेराव के बाद हुई यूनियन के प्रतिनिधि मण्डल और अधिकारियों के बीच बातचीत बेनतीजा रही थी, जिसके बाद हज़ारों प्रदर्शनकारियों ने हाउसिंग बोर्ड रोड पर, बैरिकेड के सामने ही रात्रि पड़ाव डाले रखा। आँगनबाड़ी कर्मियों की एकजुटता को देखकर देर रात प्रशासन ने 25 नवम्बर को 12 बजे यूनियन के प्रतिनिधि मण्डल व विभागीय मंत्री व निर्देशक से वार्ता का समय रखा। वहीं दूसरी तरफ़ परेड ग्राउण्ड धरना स्थल पर अन्य प्रदर्शनकारी महिलाओं ने नारों से व गीत गाकर राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार के ख़िलाफ़ रोष प्रकट करना जारी रखा।

25 नवम्बर को हुई वार्ता में यूनियन के प्रतिनिधि मण्डल ने 'महिला एवं बाल विकास' मंत्री कमलेश ढांडा व निर्देशक के सामने अपना माँगपत्रक रखा, जिसपर उपरोक्त मंत्री व निर्देशक ने कोई लिखित कार्यवाही नहीं की, महज़ ज़ुबानी ज़माख़र्च करते हुए उन्हें पूरा करने का आश्वासन दिया है। इस मौखिक आश्वासन पर फ़िलहाल यूनियन प्रतिनिधि मण्डल ने भरोसा जताया है। यूनियन प्रतिनिधि मण्डल ने इस वार्ता की पूरी जानकारी धरना स्थल पर बैठे प्रदर्शनकारी साथियों के साथ साझा करते हुए धरना समाप्त करने की घोषणा कर दी। जबकि वहाँ उपस्थित अधिकांश कर्मी लिखित समझौते के पक्ष में थीं और आन्दोलन जारी रखना चाहती थीं। लेकिन शायद यूनियन नेतृत्व पिछले 123 दिनों से चल रहे आन्दोलन में कुछ विराम लेने की मानसिकता में था।

मीडिया रिपोर्ट के अनुसार सरकार ने प्रमोशन के तहत विभाग में 50 प्रतिशत पद विभागीय पदोन्नति व एक माह चिकित्सा अवकाश देने की प्रक्रिया शुरू करने के आदेश दिये है। यूनियन की टर्मिनेटेड कोषाध्यक्ष कमला दयौरा की बहाली पर अभी तक कोई ठोस कार्रवाई नहीं की गयी है।

आन्दोलन की शुरुआत

हरियाणा में आँगनवाड़ी आन्दोलन की शुरुआत 22 जुलाई से कैथल शहर में हुई थी। यूनियन द्वारा मानदेय बढ़ोत्तरी, प्रमोशन, नियमितीकरण, एनजीओ पर रोक, पोषण ऐप की ट्रेनिंग बन्द करने जैसी माँगों को लेकर हरियाणा सरकार की महिला एवं बाल विकास मंत्री के आवास पर अनिश्चितकालीन धरना जारी था। धरने के पहले ही दिन विभाग की सुपरवाइज़र द्वारा हड़ताली कर्मियों के साथ बदसलूकी का विरोध करने के चलते यूनियन प्रधान जगमीत व कोषाध्यक्ष कमला दयौरा पर फ़र्ज़ी मुक़दमे दर्ज कर दिये गये। इस तथाकथित मसले में दो वर्करों पर सुपरवाइज़र के साथ गाली-गलौज व जातिसूचक शब्दावली के इस्तेमाल का आरोप लगाया गया। साथ ही इस पूरे मसले में सीटू की आँगनबाड़ी यूनियन ने विश्वासघात करते हुए सुपरवाइज़रों की यूनियन का समर्थन कर अन्ततः सरकार और विभाग के दमन को मज़बूत बनाने का ही काम किया।

संघर्ष के तरीक़े पर कुछ ज़रूरी बातचीत

शुरुआत से आन्दोलन को समर्थन दे रहे **बिगुल मज़दूर दस्ता** व **दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन** के प्रतिनिधित्व में साथियों ने पंचकूला धरना की समाप्ति पर अपना स्पष्ट मत नेतृत्व व आम कार्यकर्त्ताओं के समक्ष रखा था। पहला, हमें लिखित समझौता लिये बिना संघर्ष से पीछे नहीं हटना चाहिए। दूसरा, आन्दोलन में आम सभा में या ज़िलावार आँगनवाड़ी कर्मियों की राय-सुझाव लेकर हमें फ़ैसला लेना चाहिए। वैसे भी यूनियन को 2018 के समझौते से सबक़ लेना चाहिए, जो अभी तक लागू नहीं हुआ है। 2018 और इस बार भी पंचकूला में हमारा संख्याबल इतना था कि हम सरकार को लिखित माँगों पर झुका सकते थे। ज़ाहिरा तौर पर आँगनबाड़ी वर्कर्स और हेल्पर यूनियन के साथियों को राजनीतिक स्तर उठाना होगा, साथ ही ट्रेड यूनियन आन्दोलन के दाँव-पेच में भी माहिर होना होगा। यूनियन के पास एक जनवादी ढाँचा होना चाहिए यानी आम कार्यकर्ताओं द्वारा चुनी गयी राज्य से लेकर ज़िलावार, तहसीलवार कमेटियाँ हों। दूसरा हमारे पास एक स्पष्ट राजनीतिक दिशा भी हो। राजनीतिक दिशा व समझदारी से मतलब चुनावबाज़ राजनीति से नहीं बल्कि इस पूँजीवादी व्यवस्था की सीमा और पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियों का मूल्यांकन करने की समझदारी भी होनी चाहिए। दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन के 2015 और 2017 में चले संघर्ष इसका उदाहरण हैं। 2015 में श्रीमान सदाचारी केजरीवाल ने लिखित तौर पर यूनियन नेतृत्व को आश्वासन दिया था कि वह वेतन बढ़ोत्तरी करेगी और अन्य माँगों को भी पूरा करेगी, लेकिन उस पर कोई अमल नहीं किया गया। 2017 की हड़ताल में यूनियन ने 59 दिनों तक लड़ाई लड़ी और केजरीवाल सरकार को तत्काल मानदेय बढ़ोत्तरी करने और उस पर राजपत्र तक जारी करने के लिए मजबूर कर दिया था। इसके नतीजे के तौर पर आँगनवाड़ी वर्कर्स और हेल्पर्स का मानदेय सीधे दोगुना हो गया था और सुपरवाइज़रों द्वारा उत्पीड़न में भी भारी कमी आयी थी।

हम जानते हैं कि इस पूँजीवादी तंत्र में लिखित श्रम क़ानून लागू करवाना एक संघर्ष का मसला है। ऐसे में घोर मज़दूर विरोधी भाजपा के शासन वाले हरियाणा में मौखिक आश्वासन का कोई मतलब नहीं है। और आँगनवाड़ी मज़दूरों के लिए पहली लड़ाई जो मज़दूरों की पहचान हासिल करने की लड़ाई है, जिसके बिना वे श्रम अधिकार के अधिकारी भी नहीं हैं। जब भाजपा सरकार श्रम क़ानूनों को ही कचरा पेटी के हवाले करने पर तुली है, तो वैसे भी असली फ़ैसला सड़क की ताक़त से ही होना है। इसलिए कर्मचारियों को अपनी फ़ौलादी एकजुटता को क़ायम करना होगा, सीटू जैसी संशोधनवादी यूनियनों से अलग हटकर अपनी स्वतंत्र क्रान्तिकारी और जनवादी यूनियनें बनानी होंगी और जुझारू संघर्ष के लिए कमर कस लेनी होगी। केवल तभी हम अपने हक़ों को लड़कर हासिल कर सकते हैं।

दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन के साथियों ने यह वायदा किया है कि हरियाणा के आँगनवाड़ी कर्मी अपने जुझारू संघर्ष को जब भी आगे बढ़ायेंगे तो वे उनके संघर्ष में कन्धे से कन्धा मिलाकर साथ चलेंगे। दूसरा, आँगनबाड़ी में एनजीओ पर रोक, सरकारी कर्मचारी का दर्जा जैसे हमारे साझे संघर्ष के मसले हैं। जल्दी ही हमें ऐसे साझे संघर्ष के मुद्दों पर मोदी सरकार को घेरने का आन्दोलन तेज़ करना होगा जिससे हमारी एकजुटता पूरे देश के आँगनबाड़ी आन्दोलन में एक मिसाल बना सकती है।

– बिगुल संवाददाता

मेहनतकशों के ख़ून से सज रहा है इलाहाबाद का माघ मेला

अम्बरीश, अविनाश

इलाहाबाद में हर साल होने वाले माघ मेले की भव्यता और दिव्यता मेहनतकश मज़दूरों के ख़ून से सनी हुई है। 13 दिसम्बर 2021 को जब भारत का फ़ासिस्ट प्रधानमंत्री काशी में सफ़ाईकर्मियों पर फूल बरसाने और उनके साथ खाना खाने का नाटक कर रहा था, उसी के एक दिन बाद यानी 14 दिसम्बर को इलाहाबाद में माघ मेले के लिए गंगा नदी पर पानटून पुल के निर्माण में काम करते समय 28 वर्षीय मज़दूर लल्लू निषाद की नदी में गिरने की वजह से मौत हो गयी।

यह कोई सामान्य दुर्घटना नहीं बल्कि माघ मेले में, हर प्रकार के सुरक्षा मानकों को ताक पर रखकर आनन-फ़ानन में कराये जा रहे निर्माण का नतीजा है। माघ मेले के इस सरकारी/चुनावी आयोजन को "दिव्य और भव्य" बनाने के लिए प्रत्येक वर्ष सत्ता-प्रशासन-ठेकेदार के गठजोड़ द्वारा श्रम क़ानूनों और सुरक्षा मानकों की धज्जियाँ उड़ायी जाती हैं, जिसका ख़ामियाज़ा हर साल दर्ज़नों मज़दूर अपनी जान गवाँकर चुकाते हैं। सुरक्षा मानकों के हिसाब से नदी या किसी भी जल संरचना के ऊपर होने वाले निर्माण कार्य में लाइट वेट जैकेट हर व्यक्ति के लिए आवश्यक होता है। इसके अलावा मौक़े पर गोताख़ोरों की टीम भी मौजूद रहती है। माघ मेले में पूरे प्रदेशभर से आने वाले लोगों को इलाहाबाद की भव्यता दिखाकर और मेले के दौरान तमाम कार्यक्रमों के ज़रिए लोगों में उन्माद फैलाकर अपने वोट बैंक को साधने में फ़ासिस्ट योगी सरकार इतनी जल्दी में है कि इन तमाम सुरक्षा मानकों को नज़रअन्दाज़ कर रही है। सत्ता-ठेकेदार-प्रशासन के नापाक गठजोड़ हर साल पूरे देशभर में हज़ारों मेहनतकशों की मौत का कारण बनता है। ये मौतें दरअसल पूँजीवादी व्यवस्था और फ़ासिस्टों द्वारा की जाने वाली ठण्डी हत्याएँ हैं। जिसपर हर बार प्रशासनिक लीपापोती कर दी जाती है।

पिछले कुछ सालों से माघ मेला एक धार्मिक आयोजन से ज़्यादा सरकारी आयोजन बन गया है। वैसे एक बुर्जुआ लोकतांत्रिक राज्य भी न तो कोई धार्मिक आयोजन करता है और न ही उसे प्रमोट करता है, राज्य की ज़िम्मेदारी केवल प्रशासनिक व्यवस्था सम्भालने की होती है। लेकिन भाजपा बेहद संवैधानिक तरीक़े से संविधान के ढीले-ढाले और नक़ली सेक्युलर ढाँचे का फ़ायदा उठाकर पूरी राज्य मशीनरी का इस्तेमाल अपने फ़ासिस्ट एजेण्डे को पूरा करने में लगा रही है और माघ मेले और कुम्भ जैसे आयोजनों में आयोजक की भूमिका निभा रही है। माघ मेले/कुम्भ के बहाने हिन्दू धर्मावलम्बियों के इस जमघट में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, विश्व हिन्दू परिषद, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद, संस्कार भारती और वनवासी कल्याण आश्रम कैम्प लगाकर, हिन्दू प्रतीकों का इस्तेमाल कर नुक्कड़ नाटक और विभिन्न माध्यमों से अपने साम्प्रदायिक हिन्दुत्व के एजेण्डे का खुलकर बेरोकटोक प्रचार कर रहा है।

बढ़ती बेरोज़गारी और महँगाई से छात्रों, कर्मचारियों व किसानों-मज़दूरों के आन्दोलनों से चौतरफ़ा घिर चुकी मोदी-योगी सरकार के पास वोट की फ़सल को सींचने के लिए माघ मेला, अयोध्या-काशी-मथुरा आदि मुद्दों पर नफ़रत की राजनीति के सिवा कुछ बचा ही नहीं है यही कारण है कि योगी सरकार माघ मेले की तैयारियों के नाम पर करोड़ों रुपये होम कर रही है और अब इसकी सफलता के प्रचार में हज़ारों करोड़ रुपये फूँक दिये जायेंगे। इसी तरह से माघ मेले के नाम पर हर साल करोड़ों रुपये की बन्दरबाँट की जाती है और लूट के इस महासंगम में छुटभैये नेताओं से लेकर मंत्री तक, ठेकेदार से लेकर प्रशासन में बैठे अधिकारियों तक अपनी औक़ात के अनुसार डुबकी लगाते हैं। लेकिन, हर बार आम जनता की ज़िन्दगी बद से बदतर हो जाती है, जिनके कन्धों पर इस सरकारी/चुनावी मेले का आयोजन सम्पन्न होता है।

माघ मेले की चकाचौंध ख़त्म होते ही स्वच्छता का डंका पीटने वाली सरकार का स्वच्छता से मोहभंग हो जाता है! मेले के आसपास के इलाक़े में बिना शोधित कूड़ा फैला रहता है। योगी-मोदी सरकार द्वारा प्रायोजित इस राजनीतिक आयोजन में नदी से महज़ 10 मीटर की दूरी पर शौचालयों की पाइपलाइन और कैम्प बनाया जा रहा है, जिससे निकलने वाली गन्दगी से सीधे नदियाँ प्रदूषित होंगी। जहाँ पर सीवेज निकासी रोक के लिए जियो ट्यूब तकनीक का इस्तेमाल किया गया है वहाँ सीधे गंगा नदी में सीवेज और अन्य गन्दे पानी की निकासी होगी। यही कारण है कि हर बार मेला (कुम्भ और माघ) ख़त्म होने के बाद शहर में अतिसार, बुखार, हेपेटाइटिस, कालरा जैसी बीमारियों से ग्रस्त रोगियों की संख्या में बेतहाशा बढ़ोत्तरी होती है। ज़ाहिरा तौर पर इन बीमारियों की सबसे ज़्यादा मार भी आम मेहनतकश आबादी के ऊपर ही पड़ती है।

बढ़ती बेरोज़गारी, छात्रों-युवाओं-कर्मचारियों, मज़दूरों-किसानों के आन्दोलनों से चौतरफ़ा घिर चुकी मोदी-योगी सरकार के पास वोट की फ़सल को सींचने के लिए कुम्भ, राममन्दिर, हिन्दू-मुस्लिम के नाम पर बँटवारे को और तीखा करने, राष्ट्रवाद, सेना और युद्धोन्माद के अलावा कोई रास्ता नहीं बचा है। दो वर्ष पहले योगी सरकार ने लगभग चार हज़ार तीन सौ करोड़ रुपये का बजट इलाहाबाद में कुम्भ मेले के आयोजन पर और फिर इसकी सफलता के प्रचार में करोड़ों फूँक दिये। जबकि उसी के कुछ दिन बाद जब राज्य में लाखों लोग कोरोना से मर रहे थे, तब इस सरकार के पास उनकी जान बचाना तो दूर, अन्तिम संस्कार तक के लिए पैसे नहीं थे।

इस प्रकार हर साल लगने वाले माघ मेले, हर छः साल पर लगने वाला कुम्भ और बारह साल पर लगने वाले महाकुम्भ जिनकी मेहनत से जगमगाता है, उन्हीं मेहनतकशों की ज़िन्दगी को यह व्यवस्था अँधेरे गर्त में धकेल देती है। मेला ख़त्म होते ही दिव्य, भव्य, स्वच्छ, स्वस्थ मेले की सफलता का शोर हर तरफ़ सुनाई देगा लेकिन जिन लोगों ने मेले को सुगम, स्वच्छ बनाने में अपनी जान तक क़ुर्बान कर दी और वे जिन्होंने घायलों-बीमारों की सेवा की और ख़ुद कई प्रकार की बीमारियों की चपेट में आ गये, उनकी आँखों में पहले भी निराशा थी और मेला ख़त्म होने पर भी उदासी ही रहेगी, जिन लाखों हाथों के द्वारा यह सफलता सम्भव हो पायी, उनकी मर्मान्तक कहानियाँ इस शोर में कहीं गुम हो गयी हैं। असल में चौड़ी सड़कों, भव्य अखाड़ों, चमचमाती रोशनियों के पीछे अन्धकार की सत्ता है जिसके तले दबकर इन्सानियत कराह रही है।

महाराष्ट्र राज्य परिवहन निगम : यूनियनों के पीछे हटने के बावजूद कर्मचारियों की एकजुटता की बदौलत जारी है हड़ताल

अविनाश

महाराष्ट्र के राज्यपरिवहन निगम की बसों को 'लालपरी' भी कहा जाता है। महाराष्ट्र में यह 'लालपरी' सबसे पहली बार 1 जून, 1948 को पुणे से अहमदनगर के लिए चली थी। महाराष्ट्र के कोंकण और अन्य जगहों पर आज़ादी के बाद भी लम्बे समय तक एक क्षेत्र को दूसरे क्षेत्र से जोड़ने का साधन राज्य परिवहन निगम (ST) ही था। हर दिन लाखों सवारियाँ इन बसों से सफ़र करती रही हैं और आज भी क़स्बों, गाँव, शहर को आपस में जोड़ने का बेहद किफ़ायती साधन यही है। महाराष्ट्र स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन (MSRTC) ने इसके प्रचार में कहा था, 'जिथे रोड, तिथे एस.टी.' यानी जहाँ सड़क, वहाँ परिवहन निगम की बसें। मगर आज लगभग 2 महीने से महाराष्ट्र की सड़कों पर परिवहन निगम की बसें नहीं चल रही हैं। इसका कारण है परिवहन निगम के कर्मचारी जो सड़कों पर इन बसों को लेकर जाने का काम करते हैं, वे सरकार से विलय की माँग पर डटकर लड़ रहे हैं और अपनी हड़ताल को जारी रखे हुए हैं।

महाराष्ट्र परिवहन निगम के क़रीब 92,000 कर्मचारी लगभग 2 महीने से पूरे महाराष्ट्र के 250 डिपो में हड़ताल पर हैं। कर्मचारियों की मुख्य माँग राज्य सरकार में विलय की है। सरकार द्वारा हड़ताल को तोड़ने के तमाम प्रयासों को कर्मचारी चुनौती दे रहे हैं। हड़ताल की शुरुआत से ही कर्मचारियों को निलम्बित करने, सेवा समाप्त करने, बर्ख़ास्त करने, तबादला करने और कर्मचारियों को हड़ताल वापस लेने के तमाम तरह के दबाव बनाने का काम सरकार द्वारा किया जाता रहा है। राज्य सरकार द्वारा श्रमिकों को अल्प वेतन वृद्धि का लालच दिखाकर आन्दोलन को कमज़ोर करने का प्रयास भी किया गया। मगर कर्मचारी सरकार से विलय की माँग पर टस से मस होने को तैयार नहीं हैं। महाराष्ट्र सरकार द्वारा 'साम दाम दण्ड भेद' जैसी तमाम तिकड़मों से हड़ताल तोड़ने का काम किया जा रहा है। जहाँ एक तरफ़ ST बन्द होने के कारण आम जनता को यात्रा करने में परेशानी हो रही है, और इसलिए कर्मचारी काम पर लौट जाये सरकार द्वारा इसका हवाला दिया जा रहा है। वहीं दूसरी तरफ़ राज्य के परिवहन मंत्री ने कर्मचारियों को काम पर लौटने को मजबूर करने के लिए मेस्मा जैसे श्रम-विरोधी क़ानून लागू करने की धमकी भी दे रहे हैं। लेकिन इतना सब होने के बावजूद भी मज़दूर 'जब तक विलय न हो' के एकमात्र संकल्प के साथ निडर होकर अपनी हड़ताल जारी रखे हुए हैं।

राज्य परिवहन निगम के कर्मचारी एस.टी. के तमाम घोटालों और ख़राब हालात को भी उजागर कर रहे हैं। कर्मचारी बताते हैं कि शिवशाही-शिवनेरी के तहत निजी बसों को काफ़ी संख्या में पूरे महाराष्ट्र में लाया गया। वहीं लाल बसों (लाल परी) की व्यवस्था को पूरी तरह ख़राब कर दिया गया। उन्होंने आगे बताते हुए कहा कि लाल बसों के संचालन में भयंकर घोटाला है। बसों के टायर, सीट, टिकेट, कूलैण्ट में से किसी भी चीज़ को नहीं छोड़ा गया है। सालों से बन्द पड़े टोल प्लाज़ा पर भी इन लाल बसों से टोल टैक्स वसूलने का काम किया जाता है जिसका कोई हिसाब लेने वाला नहीं है। बसों में कूलैण्ट की जगह किसी तरह का लाल पानी डाल दिया जाता है जिसके चलते अक्सर गाड़ियाँ ख़राब होती रहती हैं। कर्मचारियों के कपड़ों से लेकर जूतों तक में सरकार पैसे वसूलने का काम करती है। ऊपर से बस में कोई भी दिक़्क़त हुई तो जुर्माने के तौर पर इनके वेतन से कटौती की जाती है। कर्मचारी 10-10 ,12-12 घण्टे कोल्हू के बैल की तरह खटते हैं। अगर कोई आपातकालीन स्थिति आ जाये तो बिना अतिरिक्त वेतन के ज़ुबान पर ताला लगाकर, काम पर लग जाना पड़ता है।

आज महाराष्ट्र समेत पूरे देशभर में परिवहन निगम और अन्य सरकारी संस्थानों को ख़राब करने का काम किया जा रहा है ताकि निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों को लागू किया जा सके। इन नीतियों को लागू करने के लिए सबसे पहले सरकारी संस्थानों को पूरी तरह से लचर और पंगु बना दिया जाता है जिसके बाद औने-पौने दामों में यह निजी हाथों को बेचा जा सके। हालाँकि इसकी शुरुआत कांग्रेस ने की थी मगर आज कोई भी पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टी इसमें पीछे नहीं है। भाजपा सरकार तो इसमें सबसे आगे साबित हुई है। भाजपा सरकार जिसने हाल ही में एयर इण्डिया को टाटा को बेच दिया और आगे भेल, सेल और अन्य सरकारी संस्थानों को बेचने की तैयारी में है। वह राज्य परिवहन निगम हड़ताल में अवसरवादी तरीक़े से नेतृत्व हासिल करने की कोशिश कर रही थी। मगर हड़ताल और माँग की तीव्रता को देखकर उसने पीछे क़दम हटा लिये।

ऐसे में बाक़ी तमाम पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियों का नजरिया भी देखने लायक़ है क्योंकि आर्थिक नीतियों के मामलों में ये एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। अभी हाल ही में अजित पवार यानी महाराष्ट्र के उप मुख्यमंत्री का शीत कालीन विधान सभा सत्र में बयान बहुत महत्वपूर्ण है जिसमें स्पष्ट तौर पर कहा गया कि "राज्य परिवहन निगम का सरकार में विलय नहीं हो सकता है। यह सिर्फ़ हम नहीं बल्कि कोई भी सरकार नहीं कर सकती है। अगर राज्य परिवहन निगम का सरकार में विलय कर दिया गया तो बाक़ी के कर्मचारी भी इस माँग को उठायेंगे, इसलिए यह सम्भव नहीं है।" इसी तरह दलितों के मसीहा बनने वाले 'वंचित बहुजन अघाड़ी' के प्रकाश अम्बेडकर ने भी प्रेस कॉन्फ्रेंस में कहा कि "एस.टी. (राज्य परिवहन निगम) कर्मचारियों को इसे ज़्यादा नहीं खींचना चाहिए।" महाराष्ट्र में शीतकालीन विधान सभा सत्र चल रहा है मगर शिवसेना, कांग्रेस, एनसीपी, सपा, भाजपा या किसी और ने भी पुरज़ोर तरीक़े से इस पर बात नहीं रखी है। वंचितों के "रहनुमा" बनने वाले वंचित बहुजन अघाड़ी का भी वर्ग चरित्र स्पष्ट हो चुका है। संसदीय राजनीति करने वाले 'लाल जमूरे' यानी संसदीय वामपन्थी पार्टियाँ तमाशबीन होकर सब देख रहे हैं।

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) ही ऐसी पार्टी रही जो मज़दूर-वर्गीय दृष्टिकोण के साथ राज्य परिवहन निगम आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी कर रही है। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी ने एस.टी. मज़दूरों के संघर्ष का शुरुआत से ही समर्थन किया। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के कार्यकर्ताओं ने जनता के बीच प्रचार और मुम्बई व पुणे में मज़दूरों के समर्थन में धरना प्रदर्शन किया। मुम्बई में आज़ाद मैदान, कुर्ला, पनवेल, पुणे में स्वारगेट, शिवाजीनगर, वल्लभनगर डिपो, अहमदनगर शहर में दोनों बस डिपो, साथ ही सांगली, वाशिम, पथरी (परभणी), बुलढाणा, चिपलून (रत्नागिरी), औरंगाबाद, चालीसगाँव (जलगाँव), धारूर (बीड), धुले आदि डिपो के कर्मचारियों को भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी ने डिपो में जाकर उनके संघर्ष का समर्थन किया। इन सभी जगहों पर जाकर पार्टी कार्यकर्ताओं ने लगातार पर्चा वितरित किया व आन्दोलनरत राज्य परिवहन निगम के कर्मचारियों से संवाद साधा। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) ने समय-समय पर मुम्बई के आज़ाद मैदान में सक्रिय रूप से अपनी भागीदारी की और मज़दूर वर्गीय राजनीतिक दिशा देने का काम भी लगातार कर रही है। आज़ाद मैदान में राज्य भर से सैकड़ों कार्यकर्ता गर्मी, सर्दी या बारिश की परवाह किये बिना हड़ताल जारी रखे हुए हैं। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के कार्यकर्ता राज्य परिवहन निगम के कर्मचारियों की हौसला अफ़ज़ाई करते हुए अलग-अलग डिपो में व्यापक मज़दूर वर्गीय जन एकजुटता बनाते हुए संघर्ष जारी रखने का आह्वान कर रहे हैं।

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) ने विलय की माँग को निजीकरण के ख़िलाफ़ बताया और आगे कहा कि आन्दोलन एक महत्वपूर्ण मोड़ बिन्दु पर है व इस आन्दोलन को उचित वैचारिक व राजनीतिक समझ और सर्वहारा वर्ग के निर्देशन की आवश्यकता है। आज सभी मज़दूर जानते हैं कि दलाल यूनियनें और पूँजीवादी पार्टियों से कुछ भी उम्मीद करना सम्भव नहीं है। सिर्फ़ एक वास्तविक मज़दूर वर्गीय पार्टी ही सच्चे मायनों में पूँजीपति वर्ग के हितों के ख़िलाफ़ मज़बूती से खड़ी हो सकती है और कर्मचारियों के व्यापक और दीर्घकालिक हितों का प्रतिनिधित्व कर सकती है। साथ ही मज़दूरों की एक क्रान्तिकारी यूनियन की स्थापना भी आज अनिवार्य है, जो कि तमाम सुधारवादी और समझौतापरस्त यूनियनों से अलग मज़दूर वर्ग के हितों की जुझारू तरीक़े से और सही तरीक़े से नुमाइन्दगी कर सके।

राज्य परिवहन निगम आन्दोलन के सामने मौजूद समस्याएँ और चुनौतियाँ

राज्य परिवहन निगम आन्दोलन में ट्रेड यूनियन जनवाद की कमी लम्बे समय से मौजूद रही है जिसके चलते अब तक सारी यूनियनें ग़द्दारी करके आन्दोलन से बाहर निकल चुकी हैं और अभी 20 दिसम्बर को एस.टी. आन्दोलन की अगुवाई कर रहे अजय गुजर भी राज्य परिवहन निगम के कर्मचारियों से ग़द्दारी कर बाहर जा चुका है। अजय गुजर ने अनिल परब के साथ बैठ कर टीवी के सामने घोषणा करते हुए कहा कि वह हड़ताल वापस ले रहा है। यही एक आख़िरी यूनियन थी जो आन्दोलन में अभी तक खड़ी थी, अब राज्य परिवहन निगम की सभी यूनियन आन्दोलन से पीछे हट चुकी हैं। हालाँकि, राज्य परिवहन कर्मचारियों का आन्दोलन अभी भी जारी है। ऐसे में यह ध्यान में रखना बेहद ज़रूरी है कि कर्मचारियों की एकता शुरुआत से अभी तक अभूतपूर्व रही है। लेकिन विभिन्न संघों, संघों के पदाधिकारियों द्वारा एवं कार्यकर्ताओं द्वारा धोखा दिया जाता रहा है। ऐसे में श्रमिकों के लिए इसके पीछे के कारणों को समझना जरूरी है क्योंकि रोग के लक्षणों को ठीक करने से नहीं बल्कि रोग की जड़ तक जाने पर ही समस्या का समाधान होगा। यह समझना आवश्यक है कि यूनियन में व्यक्तिगत रूप से नेतृत्व का 'प्रबन्धन' या सरकार के सामने आत्मसमर्पण करना न केवल उस नेतृत्व की कमज़ोरी का संकेत है बल्कि दीर्घकालिक तौर पर कहा जाये तो राजनीतिक और संगठनात्मक कमज़ोरी का भी संकेत है। मगर अभी देर नहीं हुई है, कर्मचारियों को अपने अनुभव से उचित सबक़ सीखना चाहिए।

जिस तरह अब तक बन्द दरवाज़ों के पीछे बैठकें, मज़दूरों को अँधेरे में रखकर सरकार से चर्चाएँ, माँगों को ग़ैर-लोकतांत्रिक तरीक़े से बिना परामर्श किये बदलना लगातार होता रहा है, इस पूरी प्रक्रिया को बदलने की ज़रूरत है। पवार से गुजर की चर्चा से बहुसंख्यक कार्यकर्ता अनभिज्ञ थे। ऐसा पहले भी लगातार होता आया है। ऐसे में यह गम्भीरता से सोचने की ज़रूरत है कि आज तक ऐसा क्यों होता आया है।

कोई भी संगठन वास्तव में प्रभावी और शक्तिशाली तभी हो सकता है जब वह वास्तव में जनवाद और मज़दूर वर्ग के दृष्टिकोण पर खड़ा हो। संक्षेप में, कर्मचारियों द्वारा भरोसेमन्द प्रतिनिधियों के गुप्त मतदान के ज़रिए, एक उचित प्रतिनिधि का निर्माण और चुनाव करना चाहिए। जो श्रमिकों के व्यापक और दीर्घकालिक हितों का प्रतिनिधित्व करे। निरन्तर शिक्षण-प्रशिक्षण, नियमित रूप से श्रमिकों की बैठकें, निजीकरण, ठेकेदारी और श्रमिकों के शोषण और मुनाफ़े पर केन्द्रित व्यवस्था की कार्यप्रणाली पर चर्चा होनी चाहिए। सामाजिक-सांस्कृतिक, जाति-धार्मिक भेदभाव की राजनीति का दृढ़ विरोध तो इस नेतृत्व को करना ही चाहिए साथ ही व्यक्तिवाद के ख़तरे से भी लगातार लड़ने की ज़रूरत है। कार्यकर्ताओं को यूनियन के काम को संचालित करने, पदाधिकारी नियमित रूप से सही काम करते हैं, सरकार के बदलते बयानों पर नज़र, व निरन्तर निगरानी करते हुए, अपनी समझ को विकसित करने की ज़रूरत है। इन सभी मुद्दों पर सतत निगरानी रखते हुए काम करने की ज़रूरत होगी, अन्यथा संगठन में व्यक्तिगत केन्द्रीयता, ग़ैर-लोकतांत्रिक प्रणाली और अवसरवाद का गढ़ बनने का ख़तरा

(पेज 6 पर जारी)

यूनियनों के पीछे हटने के बावजूद कर्मचारियों की एकजुटता की बदौलत जारी है हड़ताल

(पेज 5 से आगे)

मौजूद रहेगा। राज्यभर के राज्य परिवहन कर्मचारियों की व्यापक एकता निश्चित रूप से आन्दोलन की ताक़त है, लेकिन नेतृत्व के मामले में, किसी एक के ऊपर आश्रित न रहते हुए, आन्दोलन को सामूहिक नेतृत्व की ओर जाना चाहिए।

राज्य परिवहन निगम कर्मचारी आन्दोलन का एक ग़ैर-राजनीतिक चरित्र भी मौजूद रहा है जिसमें सबसे पहले तो

कर्मचारी संगठित होकर संघर्ष तो कर रहे हैं मगर इसे यूनियन के तौर पर नहीं देख रहे हैं बल्कि वह अपने आन्दोलन को 'दुखवटा' यानी मातम बता रहे हैं। आन्दोलन में 50 से ज़्यादा कर्मचारियों की आत्महत्या को लेकर, वह 'दुखवटा' यानी मातम के तौर पर इकट्ठा हुए हैं। यह इस आन्दोलन का ग़ैर-राजनीतिक चरित्र प्रकाश में लाता है। किसी भी न्यायपूर्ण माँग के लिए संगठित हो जनसंगठन बनाना एक जनवादी राजनीतिक माँग है और उसके लिए हड़ताल करना भी जायज़ बात है। राज्य परिवहन निगम कर्मचारियों को निश्चित तौर पर संघर्ष के दौरान यूनियनों की दलाली से नुक़सान पहुँचा है मगर बिना संगठित हुए,यूनियन का स्वरूप दिये आन्दोलन को चलाना सम्भव भी नहीं है। वैसे देखा जाये तो यूनियन द्वारा ग़द्दारी का कारण भी ट्रेड यूनियन जनवाद की कमी रहा है। जिसके चलते आन्दोलन 'व्यक्ति केन्द्रित' और 'मसीहावाद' के बीच झूलता रहा है। इसी का नतीजा है कि आज़ाद मैदान के मंच से अपनी विलय की मुख्य माँगों से हटकर, 'जय श्री राम', 'अल्लाह ओ अकबर', 'जय भीम', 'एक मराठा, लाख मराठा' जैसे नारे लगाये गये।

लेनिन 'क्या करें?' पुस्तक में अर्थवाद और स्वतःस्फूर्तवाद के विरोध में लिखते हैं कि मज़दूर वर्ग की चेतना वास्तव में तब तक राजनीतिक चेतना नहीं हो सकती जब तक कि मज़दूरों को तमाम वर्गों पर होने वाले अत्याचार, उत्पीड़न, हिंसा के सभी तरह के मामलों के बारे में क्या दृष्टिकोण रखना है, इस बारे में प्रशिक्षित नहीं किया जाता है। निश्चित तौर पर इस बारे में जो दृष्टिकोण हो उसे मज़दूर वर्गीय बिन्दु से प्रस्थान करता हो। मज़दूरों की चेतना को तब तक ठोस तौर पर वर्गीय चेतना नहीं कह सकते, जब तक मज़दूर ठोस परिस्थितियों का निरीक्षण करना नहीं सीख लेते, और इन सबसे ऊपर सामयिक, राजनीतिक तथ्यों और घटनाओं से हर दूसरे सामाजिक वर्ग और इन वर्गों के बौद्धिक, नैतिक और राजनीतिक जीवन की सभी अभिव्यक्तियों को नहीं जान लेते; जब तक वे व्यावहारिक रूप से भौतिकवादी विश्लेषण और सभी वर्गों, वर्गों और आम आबादी के समूहों के जीवन और गतिविधि के सभी पहलुओं के भौतिकवादी अनुमान को लागू करना नहीं सीख लेते।

आन्दोलन में अभी भी स्वतःस्फूर्तता का तत्व मौजूद है जबकि राज्य परिवहन निगम कर्मचारियों को सचेतन तौर पर संघर्ष को व्यापक रूप देते हुए अन्य महामण्डल के कर्मचारी जैसे आशा, आँगनवाड़ी, सफ़ाई कर्मचारियों को भी इसमें शामिल करते हुए विलय की माँग को ताक़त देनी चाहिए और जनता के बीच व्यापक प्रचार करते हुए व्यापक जन समर्थन जुटाने की कोशिश करनी चाहिए। मगर पूरे आन्दोलन को व्यवस्था और न्यायपालिका के अन्दर समेटकर रखा गया है। मज़दूरों के बीच न्यायपालिका का भ्रम बनाकर रखा गया है। हमारे सामने मारुति सुज़ुकी वर्कर्स के मानेसर प्लाण्ट का उदाहरण मौजूद है जिसमें पता चला कि न्यायपालिका के लिए मुनाफ़े के तराज़ू में मज़दूरों की ज़िन्दगी की कोई क़ीमत नहीं है। यह न्यायालय बिना ठोस सबूतों के 4 सालों तक मज़दूरों को जेल में सड़ा सकती है लेकिन ऑटोमोबाइल सेक्टर में आये दिन मज़दूरों पर हो रहे अत्याचारों और श्रम क़ानूनों के नंगे हनन की रोकथाम के लिए उसकी यही तत्परता हवा हो जाती है। मारुति की घटना के ज़रिए इस व्यवस्था ने मज़दूरों को एक नज़ीर पेश की है कि जो संगठित होने या पूँजी के चक्र को थामने की कोशिश करेगा, उसे यह व्यवस्था कुचल देगी। ख़ुद कोर्ट ने इस दबाव की पुष्टि अपने उस फ़ैसले में की थी, जब मज़दूरों को ज़मानत देने से मना करने के पीछे कोर्ट ने पूँजी के निवेश को ख़तरा होने और फ़ैक्टरियों के वहाँ से हट जाने की बात करते हुए मज़दूरों को 'सबक़' सिखाने की बात की थी।

लेनिन 'क्या करें?' पुस्तक के क्रन्तिकारी सिद्धान्त की ज़रूरत के बारे में लिखते हुए कहते हैं कि स्वतःस्फूर्तता के बारे में बहुत सारी बातें कही जाती हैं लेकिन श्रमिक आन्दोलन के स्वतःस्फूर्तता की मंज़िल पर ही सीमित कर देना उसे पूँजीपति वर्ग की राजनीति और विचारधारा के अधीन कर देना है। इससे क्रीडो (अर्थवादी भटकाव) के कार्यक्रम की तरफ़ बढ़ने लगता है। आज महाराष्ट्र के परिवहन मज़दूरों के आन्दोलन को भी इन सवालों पर सोचना पड़ेगा और सचेतन तौर पर अपने आन्दोलन को एक ठोस सर्वहारा राजनीतिक दिशा देनी होगी, अन्यथा अन्त में हमारे हाथ निराशा ही लगेगी और एक सम्भावनसम्पन्न आन्दोलन हताशा में समाप्त होगा।

पंजाब में केजरीवाल और चन्नी में "आम आदमी" बनने की हास्यास्पद होड़

(पेज 1 से आगे)

आते ही एक दूसरे के ख़िलाफ़ चल रहे प्रदर्शनों में भागीदारी करने की नौटंकी कर रहे हैं! कांग्रेस सरकार के ख़िलाफ़ मोहाली में 165 दिनों से चल रहे संविदा शिक्षकों के प्रदर्शन में 27 नवम्बर को केजरीवाल शामिल हुए और अपनी सरकार बनते ही उनको पक्की नौकरी का 'आश्वासन' दिया। वहीं पंजाब कांग्रेस के अध्यक्ष नवजोत सिंह सिद्धू 5 दिसम्बर को दिल्ली में केजरीवाल के निवास स्थान के बाहर गेस्ट टीचर्स के प्रदर्शन में बैठ गये। अखिल भारतीय गेस्ट शिक्षक संघ के अनुसार दिल्ली में 22,000 से ज़्यादा शिक्षक 'गेस्ट' के रूप में काम कर रहे हैं और इनमे से अधिकतर पिछले सात सालों से एक स्थायी शिक्षक जितना काम कर रहे हैं। कोई भी व्यक्ति यह बता सकता है कि इन प्रदर्शनों में शामिल होने के पीछे सिर्फ़ राजनीतिक लाभ की आकांक्षाएँ ही छुपी हैं क्योंकि अगर ये सच में जनता के मुद्दों से सरोकार रखते तो यह नौबत आज आती ही नहीं।

पंजाब में अकुशल, अर्द्ध-कुशल, कुशल और अत्यधिक कुशल श्रेणी के मज़दूरों के लिए न्यूनतम मज़दूरी क्रमशः 9,192, 9,972, 10,869 और 11,901 रुपये प्रति माह है। खेत मज़दूरों को तो न्यूनतम वेतन भी नहीं मिलता है। कोई भी मज़दूर इतने में अपना और अपने परिवार का गुज़ारा नहीं कर सकता है पर असंगठित क्षेत्र के मज़दूर को इतना भी मिल जाये तो ग़नीमत है।

ग़रीब किसानों को कोई भी सहायता प्रदान करने में कांग्रेस सरकार पूरी तरह से असफल रही है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के द्वारा 2019 में जारी की गयी रपट के अनुसार पंजाब में हर दिन सात किसान आत्महत्या करते हैं। साल 2020 में ही आत्महत्या के 2357 मामले दर्ज हुए थे। धनी किसान-कुलक और आढ़तिये, जो अक्सर यही धनी किसान होते हैं, ग़रीब किसानों को ऊँची ब्याज़ दरों पर ऋण देते हैं, जिस ऋणग्रस्तता के शिकार ग़रीब और सीमान्त किसान होते हैं और यही आत्महत्याओं का मुख्य कारण बनता है। सरकार ये दावा कर रही है कि उसके द्वारा साढ़े पाँच लाख किसानों का क़र्ज़ माफ़ किया जा चुका है तो इन मौतों के पीछे की क्या वजह है? कोरोना काल में भी यही धनी किसान पंचायतें बुलाकर खेत मज़दूरों की मज़दूरी की सीलिंग तय कर रहे थे और किसी दूसरे गाँव में जाकर काम करने पर उनके सामाजिक बहिष्कार की बात कर रहे थे। भारत के अलग-अलग राज्यों से पंजाब आने वाले मज़दूरों के शोषण और उत्पीड़न में ये कुलक-धनी किसान कोई कसर नहीं छोड़ते हैं। ऐसे मौक़ों पर सरकार अपनी आँखे फेर लेती है और इन शोषकों पर कार्रवाई करने से बचने की कोशिश करती है। ग़रीब किसानों के लिए सरकार के पास संस्थाबद्ध ऋण और खेती में लगने वाले इनपुट को धनी किसानों समेत पूँजीपति वर्ग पर विशेष कर लगाकर सस्ती दरों में उपलब्ध कराने के कोई इन्तज़ाम नहीं हैं क्योंकि ये चुनावी पार्टियाँ कुलकों-धनी किसानों की नुमाइन्दगी करती हैं।

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के अनुसार 2017 में पंजाब में दलित उत्पीड़न के मामलों की संख्या 118 थी। 2018 में 168 मामले, 2019 में 166 और 2020 में 165 ऐसे मामले सामने आये। ये वे मामले हैं जिनमें एफ़आईआर दर्ज की गयी थी या पुलिस की तरफ़ से कार्रवाई की गयी। अधिकतर ऐसे मामले तो सामने ही नहीं आ पाते हैं और इनकी वास्तविक संख्या कई गुना ज़्यादा होती है। इन हत्याओं और उत्पीड़न के अधिकतर मामलो में उच्च जातियाँ, जाट-सिख ही दोषी पाये जाते हैं। बेअदबी के नाम पर भीड़ द्वारा हत्याओं को भी सरकार द्वारा नज़रअन्दाज़ किया जाता है और इन मामलो में दोषियों को कोई सज़ा नहीं दी जाती है। और ऐसे हर मामले में सरकार न केवल चुप्पी साध लेती है बल्कि कई बार दोषियों को बचाने की पूरी कोशिश भी करती है। इससे शर्मनाक और क्या बात होगी कि ठीक चुनावों से पहले कांग्रेस ने एक दलित नेता को मुख्यमंत्री की कुर्सी पर बैठा दिया है! पंजाब में रह रहे 32 प्रतिशत दलितों को लुभाने के अलावा और इसका क्या मक़सद हो सकता है? नवम्बर में मुख्यमंत्री के पद से इस्तीफ़ा देकर और कांग्रेस छोड़कर नयी पार्टी बनाने वाले अमरिन्दर सिंह अब भाजपा के साथ गठबन्धन बना चुके हैं। इससे इतना तो साफ़ हो जाता है कि पूँजीवादी लोकतंत्र में नेता-मंत्री व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए किसी भी हद तक गिर सकते हैं और घाघ अवसरवादी होते हैं।

'आम आदमी' का चोगा पहने केजरीवाल सरकार भी दिन रात फ़ैक्टरी मालिकों, प्रॉपर्टी डीलरों और व्यापारियों की सेवा में लगी रहती है। आप पार्टी के शासनकाल में दिल्ली के अलग-अलग इलाक़ों में फ़ैक्टरी मालिकों को ख़ूब फलने-फूलने का मौक़ा मिला। मसलन, सेल्स टैक्स के छापे रुक गये, नये कारख़ाने आदि लगाना आसान हो गया और श्रम क़ानूनों पर अमल को सोचे-समझे तौर पर ढीला कर दिया गया। इन सब का ख़ामियाज़ा दिल्ली की मेहनतकश आबादी को भुगतना पड़ा जो अपना हाड़-माँस गलाकर इन मालिकों के लिए मुनाफ़ा पैदा करती है। अभी नवम्बर महीने में दिल्ली सरकार द्वारा न्यूनतम वेतन में फिर से बढ़ोतरी की गयी है। पर ये बढ़ोतरी सिर्फ़ काग़ज़ों पर बदलाव के अलावा और कुछ नहीं है। ज़मीनी हक़ीक़त तो यह है कि दिल्ली में मेहनतकश आबादी बड़ी तादाद में न्यूनतम वेतन से काफ़ी कम में खटती है।

दिल्ली के मेहनतकशों को पिछले पाँच सालों में महँगाई, अनियोजित लॉकडाउन में खाने-पीने या घर जाने की असुविधा, बरसात के मौसम में मज़दूर बस्तियों में पानी भरने की समस्या या कूड़े के ढेरों की समस्या का सामना करना पड़ा है। इनका कोई भी हल तो सरकार निकाल नहीं पायी मगर अपने नरम हिन्दुत्ववादी एजेण्डे को सरकार अमल में लाने की पूरी कोशिश में है। सरकार ने पिछले महीने अयोध्या भ्रमण के लिए मुफ़्त रेल सेवा शुरू की है। 2019 में केन्द्र सरकार द्वारा पारित किये गये जनता विरोधी राष्ट्रीय जनसँख्या रजिस्टर और नागरिकता संशोधन क़ानून के ख़िलाफ़ बिल पारित करने में भी सबसे देर केजरीवाल सरकार ने ही लगायी थी। ये कहना कोई अतिश्योक्ति नहीं होगा कि केजरीवाल भाजपा का ही छोटा भाई है।

कांग्रेस और आम आदमी पार्टी को चुनाव प्रचार के लिए अलग-अलग उद्योगपतियों, कारोबारियों, फ़ैक्टरी मालिकों, धनी किसानों से तो चन्दा मिलता ही है उसके अलावा इनके नेताओं-मंत्रियों की भी जेबें हमेशा गर्म रहती हैं। 2017 के चुनावों में चरणजीत सिंह चन्नी ने 14 करोड़ की घोषित संपत्ति दर्ज करायी थी, उन्हीं चुनावों में पंजाब कांग्रेस कमिटी के अध्यक्ष नवजोत सिंह सिद्धू की कुल घोषित सम्पत्ति 45 करोड़ से ऊपर थी। आम आदमी पार्टी के संगरूर से चुने सांसद भगवन्त मान की घोषित सम्पत्ति 1.2 करोड़ थी और अरविन्द केजरीवाल ने लगभग साढ़े तीन करोड़ की घोषित सम्पत्ति दर्ज करायी थी। इन्हें 'आम आदमी' कहना दिन रात एक करके ज़िन्दगी गुज़ारने वाली बड़ी आबादी के साथ एक भद्दा मज़ाक़ ही होगा।

इन सब बातों से इतना तो साफ़ हो ही जाता है कि न तो ये दोनों पार्टियाँ 'आम' हैं और ना ही इनके नेता-मंत्री 'आम आदमी'। ये दोनों ही पार्टियाँ 'ख़ास' हैं और 'ख़ास वर्ग' के हितों की नुमाइन्दगी करती हैं और उन्हीं के लिए सब नियम क़ानून बनाती हैं। मेहनतकश जनता को यह जान लेना होगा कि राज्य में चाहे कोई भी पूँजीवादी पार्टी सरकार बनाये, उनकी ज़िन्दगी में कोई बेहतर बदलाव नहीं आने वाला है। शिक्षा, रोज़गार, स्वास्थ्य जैसी माँगों के इर्द-गिर्द लामबन्द होकर जब तक अपना पक्ष ख़ुद नहीं खड़ा किया जायेगा तब तक देश की मेहनतकश आबादी बर्बाद ही रहेगी।

कश्मीर में भारतीय राज्यसत्ता का ख़ूनी खेल और मोदी सरकार की धूर्त साम्प्रदायिक चालें

– आनन्द

कश्मीर में इस समय भीषण ठण्ड और बर्फ़बारी शुरू हो चुकी है। हर साल की तरह इस बार भी कश्मीरी लोग फ़ेरन और काँगड़ी जैसी स्थानीय तरक़ीबों के सहारे इस भीषण ठण्ड का मुक़ाबला कर रहे हैं। लेकिन कश्मीरियों को इस भीषण ठण्ड के साथ ही साथ भारतीय राज्यसत्ता के ज़ुल्मों-ज़्यादतियों और फ़ासिस्ट मोदी सरकार की घृणित साम्प्रदायिक चालों का भी सामना करना पड़ रहा है जिसकी वजह से उनके कष्टों को बर्दाश्त करने की सीमा पार हो रही है। एक तरफ़ भारतीय सेना और पाक-समर्थित आतंकियों के बीच जारी ख़ूनी मुठभेड़ों की वजह से आम कश्मीरियों की ज़िन्दगी पर जोखिम बढ़ता जा रहा है तो दूसरी तरफ़ केन्द्र की मोदी सरकार द्वारा जम्मू-कश्मीर में साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण तीखा करने के लिए गठित किये गये परिसीमन आयोग की सिफ़ारिशों के ज़रिए कश्मीर घाटी के लोगों की राजनीतिक आकांक्षाओं को बुरी तरह से कुचलकर उन्हें दोयम दर्जे का नागरिक बनाने की साज़िशें रची जा रही हैं। इस लेख में आगे हम देखेंगे कि किस प्रकार परिसीमन आयोग की ये सिफ़ारिशें अनुच्छेद 370 को निष्प्रभावी बनाने और जम्मू व कश्मीर से राज्य का दर्जा छीनने के बाद कश्मीरियों के प्रतिनिधित्व और मताधिकार के बुनियादी राजनीतिक अधिकारों पर कुठाराघात करने की दिशा में अगला क़दम हैं। भारतीय राज्य ने कश्मीरियों से उनके आत्मनिर्णय का अधिकार तो दशकों पहले ही छीन लिया था, अब प्रतिनिधित्व और मताधिकार के औपचारिक अधिकार पर भी डाका डालने की तैयारी चल रही है।

अनुच्छेद 370 को निष्प्रभावी बनाने के बाद भी घाटी में हिंसा बदस्तूर जारी है

5 अगस्त, 2019 को जम्मू व कश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा देने वाले संविधान के अनुच्छेदों 370 और 35(ए) को हटाने और जम्मू व कश्मीर को केन्द्रशासित प्रदेश बनाते वक़्त नरेन्द्र मोदी और अमित शाह की सरकार ने यह दावा किया था कि इसके बाद कश्मीर में हिंसा ख़त्म हो जायेगी और अमन-चैन का नया दौर शुरू होगा। लेकिन उसके बाद 2 साल से ज़्यादा का समय बीतने के बाद कश्मीर का सूरते हाल यह है कि वहाँ हिंसा ख़त्म होने की बजाय बढ़ ही रही है और कश्मीर में निर्दोष नागरिकों का क़त्लेआम थमने का नाम ही नहीं ले रहा है। गत 8 दिसम्बर को केन्द्रीय गृह राज्य मंत्री नित्यानन्द ने राज्यसभा में स्वयं यह जानकारी दी कि अनुच्छेद 370 को निष्प्रभावी बनाने के बाद से लेकर अब तक घाटी में 96 नागरिकों की मौत हो चुकी है। ग़ौरतलब है कि इस दौरान अधिकांश समय तक कश्मीर में पूर्ण लॉकडाउन लगा रहा था। अब तक यह संख्या सौ के पार जा चुकी होगी क्योंकि वहाँ आये दिन सुरक्षा बलों या आतंकियों द्वारा नागरिकों की हत्या की वारदातें हो रही हैं।

जहाँ एक ओर पाक-समर्थित आतंकी प्रवासी मज़दूरों और अल्पसंख्यक कश्मीरी पण्डितों को निशाना बना रहे हैं वहीं दूसरी ओर सुरक्षा बल मुठभेड़ के नाम पर आम कश्मीरियों को बिना किसी प्रमाण के आतंकी बताकर उन्हें मौत के घाट उतार रहे हैं। इसका सबसे बड़ा सबूत घाटी की हैदरपोरा मुठभेड़ में देखने में आया जिसमें मारे गये 4 लोगों में से 3 लोगों के आतंकी होने या आतंकियों के साथ किसी भी क़िस्म का सम्बन्ध होने का कोई प्रमाण नहीं दिया गया। यहाँ तक कि मरने वाले निर्दोष नागरिकों के शव भी उनके परिजनों के हवाले नहीं किये गये और गुप्त ढंग से उनके मृत शरीर को दफ़ना दिया गया। कश्मीरियों का आरोप है कि सुरक्षा बलों ने तीन नागरिकों को मानव ढाल के रूप में इस्तेमाल किया। जब मृतकों के परिजन सहित कश्मीर के प्रमुख नेताओं और आम नागरिकों ने सड़कों पर उतरकर प्रदर्शन किया तब जाकर दो नागरिकों के शव उनकी क़ब्र से निकालकर उनके परिजनों के हवाले किये गये। लेकिन 23 वर्षीय आमिरमागरे जो एक ग़रीब मज़दूर का बेटा था उसके शव को उसके परिजनों के हवाले नहीं किया गया। आमिरमागरे के पिता अब्दुलमागरे प्रशासन से गुहार लगाते रहे कि उन्हें उनके बेटे का शव वापस किया जाये, लेकिन प्रशासन ने उनकी एक न सुनी और न ही उनके बेटे के आतंकी होने का कोई सबूत पेश किया। इस प्रकार की घटनाएँ कश्मीरियों के अलगाव को और भी ज़्यादा बढ़ाने का काम करती हैं। ग़ौरतलब है कि अब्दुलमागरे ने 2005 में ख़ुद एक आतंकी को मार गिराया था जिसके लिए उन्हें राज्य सरकार की ओर से बहादुरी पुरस्कार भी मिल चुका था।

मुठभेड़ों के अलावा कश्मीरियों पर यूएपीए और राजद्रोह के मुक़दमे थोपने की कार्रवाइयाँ भी बदस्तूर जारी हैं। गत 23 नवम्बर को एनआईए ने कश्मीर के प्रसिद्ध मानवाधिकारकर्मी ख़ुर्रम परवेज़ को आपराधिक षड्यंत्र और भारत के ख़िलाफ़ युद्ध छेड़ने के अपराध में यूएपीए के तहत गिरफ़्तार कर लिया। अक्तूबर में भारत-पाकिस्तान क्रिकेट मैच में पाकिस्तान की जीत पर जश्न मनाने के आरोप में कई कश्मीरियों को राजद्रोह के आरोप में गिरफ़्तार कर लिया गया जिन्हें अभी तक नहीं छोड़ा गया है।

परिसीमन के ज़रिए जम्मू व कश्मीर का साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण तीखा करने की साम्प्रदायिक साज़िशें

जहाँ एक ओर कश्मीर में हिंसा की वारदातें बदस्तूर जारी हैं वहीं दूसरी ओर केन्द्र सरकार ने जम्मू व कश्मीर के विधान सभा निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन करने के लिए आयोग गठित करके जम्मू व कश्मीर के लोगों को धर्म के नाम पर बाँटकर आने वाले दिनों में समूचे इलाक़े को साम्प्रदायिकता की आग में झोंकने की पूरी तैयारी कर ली है। ग़ौरतलब है कि पूरे देश में निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन 2026 में करना तय है जिसे 2021 की जनगणना के आँकड़ों के आधार पर किया जायेगा। लेकिन जम्मू व कश्मीर में इस समय सीमा से पहले ही परिसीमन आयोग गठित करके परिसीमन करने के पीछे केन्द्र की भाजपा सरकार की मंशा मुस्लिम-बहुल कश्मीर डिवीज़न के मुक़ाबले हिन्दू-बहुल जम्मू डिवीज़न की सीटों को बढ़ाने की है ताकि भविष्य में जब जम्मू व कश्मीर में चुनाव हों तो भाजपा का पलड़ा भारी हो और उसके अपने मुख्यमंत्री बनने की सम्भावना बढ़ जाये।

जम्मू व कश्मीर परिसीमन आयोग ने अपनी मसौदा सिफ़ारिशों में केन्द्र सरकार की मंशा के ही अनुरूप 7 नयी सीटों में 6 जम्मू डिवीज़न की झोली में डाली हैं जबकि कश्मीर डिवीज़न के हिस्से में मात्र एक सीट आयी है। ग़ौरतलब है कि जम्मू व कश्मीर से राज्य का दर्जा छीनने से पहले वहाँ की विधान सभा में प्रभावी रूप से 83 सीटें हुआ करती थीं जिसमें जम्मू डिवीज़न की 37 सीटें और कश्मीर डिवीज़न की 46 सीटें हुआ करती थीं। अगर परिसीमन आयोग की मसौदा सिफ़ारिशें लागू होती हैं जो जम्मू डिवीज़न की सीटें बढ़कर 43 हो जायेंगी जबकि कश्मीर डिवीज़न की सीटों में केवल एक सीट का इज़ाफ़ा होगा। इस प्रकार जम्मू व कश्मीर डिवीज़न की सीटों के बीच का अन्तर 9 से घटकर 4 रह जायेगा। जबकि 2011 की जनगणना के अनुसार कश्मीर डिवीज़न की जनसंख्या जम्मू डिवीज़न की जनसंख्या से 15 लाख अधिक है। सवा करोड़ की कुल आबादी वाले जम्मू व कश्मीर में कश्मीर और जम्मू की आबादी का अनुपात 56.2 प्रतिशत:43.8 प्रतिशत है जबकि परिसीमन आयोग की मसौदा सिफ़ारिशों में कश्मीर और जम्मू के लिए प्रस्तावित सीटों का अनुपात 52.2 प्रतिशत:47.8 प्रतिशत है। इन आँकड़ों से यह दिन के उजाले की तरह स्पष्ट हो जाता है कि जम्मू व कश्मीर परिसीमन आयोग केन्द्र सरकार के इशारे पर काम कर रहा है। आयोग ने कश्मीर की बजाय जम्मू में सीटें बढ़ाने के पीछे यह तर्क दिया है कि जम्मू का क्षेत्रफल ज़्यादा है। इस हास्यास्पद तर्क को अगर भारत के अन्य हिस्सों में लागू किया जाये तो राजस्थान में लोकसभा और विधानसभा की सीटें उत्तर प्रदेश की सीटों से लगभग डेढ़ गुना अधिक होनी चाहिए क्योंकि राजस्थान का क्षेत्रफल उत्तर प्रदेश के क्षेत्रफल का डेढ़ गुना है। ज़ाहिर है कि आबादी की बजाय क्षेत्रफल के आधार पर निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन 'एक व्यक्ति एक वोट' के जनवादी उसूल के ख़िलाफ़ जाता है और इस वजह से परिसीमन आयोग की मसविदा सिफ़ारिशें कश्मीर के लोगों के प्रतिनिधित्व व मताधिकार के जनवादी अधिकारों का हनन करती हैं।

इसके अलावा परिसीमन आयोग ने 9 सीटों को अनुसूचित जनजाति के लोगों, जिनमें गुज्जर, बकरवाल और पहाड़ी लोग शामिल हैं, के लिए आरक्षित करने की भी सिफ़ारिश है। इस सिफ़ारिश से सामान्य तौर पर कोई दिक़्क़ततलब बात नहीं है, लेकिन इसके पीछे भी भाजपा की मंशा पहाड़ी समुदाय के लोगों के बीच अपना आधार फैलाकर उनका वोट जीतकर अपनी सरकार बनाने की है। ग़ौरतलब है कि हाल ही में जम्मू में नेशनल कान्फ्रेंस के प्रमुख नेता देवेन्दर सिंह राणा और सुरजीत सिंह सलाथिया दल बदलकर भाजपा में शामिल हो गये हैं। इस प्रकार भाजपा जम्मू में अपना आधार और मज़बूत करके कश्मीर घाटी का राजनीतिक महत्व कम करने की साज़िशें रच रही है। इन साज़िशों का सीधा असर कश्मीरियों के बढ़ते अलगाव के रूप में सामने आना तय है।

भाजपा सरकार की ये सारी नीतियाँ कश्मीरी क़ौम के बढ़ते क़ौमी दमन का ही प्रतिनिधित्व करती हैं। भारत के मज़दूर वर्ग का यह कर्तव्य है कि वह इस बर्बर क़ौमी दमन का विरोध करे और कश्मीर की दमित क़ौम के साथ एकजुटता स्थापित करे। जो मज़दूर वर्ग अपने शासक वर्ग का अन्य दमित क़ौमों के दमन में सहयोग करता है या उस पर मौन रहता है, वह स्वयं भी अपने शासक वर्ग के जुए तले दबकर रहने के लिए अभिशप्त होता है। क़ौमी दमन का पूर्ण ख़ात्मा करके ही सर्वहारा वर्ग अधिकतम सम्भव बड़े साझा राज्य की स्थापना को सम्भव बना सकता है।

खनन माफ़िया व ठेकेदारों के मुनाफ़े की भेंट चढ़े मज़दूर! सरकारी तंत्र के दामन पर फिर ख़ून के छींटे!

तोशाम में पहाड़ दरकने से 6 मज़दूरों की मौत!

पहली जनवरी की सुबह हरियाणा में भिवानी ज़िले के तोशाम इलाक़े में अरावली पर्वतमाला में खनन के दौरान पहाड़ दरकने से 6 मज़दूरों की जान चली गयी। दर्ज़नों मज़दूर मलबे में दब गये। मीडिया और आम जनता को घटनास्थल के पास जाने की भी इजाज़त नहीं थी क्योंकि हमेशा की तरह हत्यारा सरकारी तंत्र और मुनाफ़ाख़ोर खनन माफ़िया चाहता था कि मौतों के असल आँकड़े लोगों के सामने न आयें। यहाँ पर कितने मज़दूर काम कर रहे थे इसकी सही-सही जानकारी न तो ठेकेदार के पास है और न ही प्रशासन के पास।

अरावली पर्वतमाला क्षेत्र में पिछले दो महीने से खनन के काम पर नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल ने प्रदूषण का हवाला देकर रोक लगायी हुई थी। खनन करने वालों की एसोसिएशन खनन दोबारा शुरू करने की बार-बार माँग उठा रही थी। खनन पर रोक को दो दिन पहले ही हटाया गया था। खनन पर रोक के चलते पत्थरों की माँग कुछ बढ़ गयी थी। खनन माफ़िया और जमाख़ोरों ने माँग को जानबूझकर भी बढ़ने दिया था। बढ़ी हुए माँग के मद्देनज़र अधिकाधिक मुनाफ़ा कमाने के लिए आज सुबह पहाड़ में बड़े स्तर पर ब्लास्ट किये गये थे। उसकी वजह से ही पहाड़ दरक गया और यह हादसा हुआ। असलियत में यह कोई हादसा नहीं था बल्कि खनन माफ़िया, ठेकेदारों और सरकारी तंत्र सीधे तौर पर श्रमिकों की मौतों के लिए ज़िम्मेदार हैं। सरकारें जानबूझकर ऐसी घटनाओं की अनदेखी करती हैं क्योंकि माफ़िया और ठेकेदार ही चुनाव के समय तमाम पार्टियों को चन्दा देते हैं।

यह कोई पहली घटना नही है जिसमें मुनाफ़े की हवस और प्रशासन कि लापरवाही के चलते मज़दूरों की जान चली गयी। कोयले, धातु से लेकर हर प्रकार के खनन के दौरान आये दिन ऐसे हादसे होते रहते हैं। खनन का कार्य ज़्यादातर जगह ठेकेदार करवाते हैं। यहाँ काम करने वाले मज़दूर दिहाड़ी या पीसरेट पर काम करते हैं। खनन के दौरान उनके लिए सुरक्षा के भी कोई इन्तज़ाम नहीं होते। ठेकेदार अपने मुनाफ़े को बढ़ाने के चक्कर में श्रमिकों की सुरक्षा का क़त्तई ख़याल नहीं रखते। हर साल सैकड़ों मज़दूर मुनाफ़े की भेंट चढ़ जाते हैं।

आज रहे-सहे श्रम क़ानूनों को भी मज़दूर अपनी एकजुटता और संघर्ष के दम पर ही लागू करा सकते हैं और संघर्ष के दम पर ही बेहतर कार्यस्थिति हासिल कर सकते हैं। असल में इन हादसों की जड़ मुनाफ़ा केन्द्रित पूँजीवादी व्यवस्था में है। इसमें धनपशुओं का मुनाफ़ा मेहनतकशों की जान से ज़्यादा मूल्यवान होता है। मुनाफ़े के हाथों मज़दूरों की हत्याओं की ऐसी घटनाओं का ख़ात्मा इस व्यवस्था के ख़ात्मे के साथ ही सम्भव है।

– बिगुल संवाददाता

पंजाब में धार्मिक चिह्नों की "बेअदबी" के नाम पर मॉब लिंचिंग की बढ़ती घटनाएँ

इस धर्मान्धता और मज़हबी उन्माद के ख़िलाफ़ मेहनतकशों को उठ खड़े होना होगा!

शिवानी

पंजाब में सिख धार्मिक चिह्नों की तथाकथित बेअदबी और "बेअदबी" करने वालों की धार्मिक कट्टरपन्थियों द्वारा सरेआम हत्याओं के एक के बाद एक मामले सामने आ रहे हैं। हाल ही में घटी एक वारदात में स्वर्ण मन्दिर, अमृतसर में एक युवक की इसी "बेअदबी" के नाम पर उन्मादी भीड़ द्वारा हत्या कर दी गयी। एक अन्य घटना में कपूरथला में सिख धर्म के प्रतीक निशान साहिब का "अपमान" करने के नाम पर एक और युवक की कट्टरपन्थियों द्वारा पीट-पीटकर हत्या कर दी गयी। अभी ज़्यादा दिन नहीं गुज़रे हैं जब सिख कट्टरपन्थी निहंगों द्वारा किसान आन्दोलन के दौरान सिंघु बॉर्डर पर एक दलित मज़दूर की बेरहमी से हत्या को सरेआम अंजाम दिया गया था। एक अन्य घटना में किसान आन्दोलन के धरनास्थल पर ही एक कट्टरपन्थी निहंग द्वारा एक अन्य मज़दूर की पिटाई की घटना भी सामने आयी थी।

पंजाब में 2015 से लेकर अब तक धार्मिक चिह्नों के तथाकथित अपमान के 100 से भी ज़्यादा मामले सामने आ चुके हैं और कई लोगों की हत्याएँ "बेअदबी" के नाम पर खुलेआम की जा चुकी हैं। यह एक बार फिर दिखलाता है कि पूँजीवादी आर्थिक संकट के गहराने के साथ ही पंजाब समेत पूरे देश में मज़हबी कट्टरपन्थ बढ़ा है तथा समाज में प्रतिक्रियावाद की जड़ें और भी गहरी व मज़बूत हुई हैं। ऐसा नहीं है कि सिख धर्म इससे अछूता है। अक्सर कम्युनिस्टों द्वारा भी सिख धर्म को अपवाद के रूप में पेश किया जाता है और उसके प्रगतिशील चरित्र पर बल दिया जाता है। कोई भी धर्म अन्ततः धर्म ही होता है, विज्ञान नहीं। हर धर्म इतिहास में निश्चित ऐतिहासिक कारणों के चलते पैदा होता है, लेकिन वह एक जड़सूत्र होता है और अपने समय में कोई प्रगतिशील भूमिका निभाने के बावजूद अन्ततः उसका चरित्र प्रतिक्रियावादी होना ही होता है। सिख धर्म भी धर्मों के विषय में आम तौर पर कही जा सकने वाली इस बात का अपवाद नहीं है। वैज्ञानिक नज़रिए और धर्म में यह अन्तर होता ही है और यह हर धर्म पर लागू होता है। इसलिए हर धर्म और उसके समुदाय में धर्मान्धता और कट्टरपन्थ का पनपना लाज़िमी है।

हम देख सकते हैं कि आम तौर पर प्रतिक्रियावादी दौर में धार्मिक कट्टरपन्थी, जातिवादी व स्त्री-विरोधी ताक़तों को अपनी मानवद्रोही हरकतों को अंजाम देने का और संवेग मिलता है। आम मेहनतकश आबादी का एक हिस्सा भी इस धर्मान्धता और मज़हबी जुनून का शिकार होता है जो अपने जीवन की समस्याओं के असली सारभूत कारण न समझने की वजह से ऐसी कट्टरपन्थी ताक़तों के भ्रामक प्रचार और उन्मादी लहर का शिकार बन जाते हैं। आम तौर पर भी पूँजीवाद में जब-जब आर्थिक संकट गहराता है और बेरोज़गारी, महँगाई, भुखमरी बढ़ती है, तब-तब समाज में प्रतिक्रिया, अवैज्ञानिकता, अतार्किकता, कूपमण्डूकता और धार्मिक उन्माद भी उसी अनुपात में पनपते हैं। पंजाब में धर्म के नाम पर हो रही ये हत्याएँ यह भी स्पष्ट कर देती हैं कि कोई भी धर्म अपने आप में "सहिष्णु" या "उदार" नहीं होता है जैसा कि इन घटनाओं के बाद एक लिबरल तबक़ा और यहाँ तक कि कुछ तथाकथित कम्युनिस्ट तक सिख धर्म की "विशिष्टता" को लेकर दुहाई दे रहा है।

यह बात भी सच है कि आम तौर पर पूरे देश में ही चुनाव नज़दीक आते ही धार्मिक चिह्नों से तथाकथित छेड़छाड़, साम्प्रदायिक दंगों और जातीय तनावों के मामले बढ़ने लग जाते हैं। ऐसे मामले मेहनतकश जनता के जीवन से जुड़े असली मुद्दों से उनका ध्यान भटकाने का ही काम करते हैं और उनके बीच की एकजुटता को तोड़ते हैं। इनमें फ़ायदा सत्ताधारियों का ही होता है। ज़ाहिरा तौर पर जनता को आपस में बाँटने, लड़ाने व धार्मिक उन्माद भड़काने के मक़सद से किसी धर्म के प्रतीक चिह्न के साथ सचेतन छेड़छाड़ करने वालों और ऐसे मामलों में संगठित षड्यंत्र होने पर क़ानून व्यवस्था द्वारा असल दोषियों को सज़ा दी जानी चाहिए। हमारे देश इस तरह की सचेतन कारगुज़ारियों को अंजाम देते हुए अक्सर हिदुत्व फ़ासिस्ट और हिन्दू कट्टरपन्थी संगठन पाये गये हैं जब साज़िशाना तरीक़े से कभी किसी हिन्दू धार्मिक स्थल पर "गौ मांस" की बरामदगी के नाम पर तो कभी किसी देवी-देवता का "अपमान" किये जाने के नाम पर मुसलमानों के ख़िलाफ़ क़त्लेआम और मॉब लिंचिंग तक करवाये गये हैं। हालाँकि एक भी ऐसे मामले में असली दोषियों के ख़िलाफ़ पुलिस-प्रशासन और सरकारी तंत्र की एक अदना-सी कार्रवाई भी नहीं होती है।

मुख्य सवाल यह है कि धर्म के नाम पर हो रही इन बर्बर हत्याओं को किस रूप में जायज़ ठहराया जा सकता है? पंजाब में सिख धार्मिक कट्टरपन्थियों द्वारा "बेअदबी" के नाम पर लोगों को मौत के घाट उतारकर "तालिबानी न्याय" देना किस आधार पर सही है? "धार्मिक भावनाओं के आहत" होने का यह तर्क बेहद ख़तरनाक है और धर्म के नाम पर किसी भी नृशंस कार्रवाई को वैधीकरण देने का काम करता है मानो कि तब किसी इन्सान की हत्या हत्या नहीं रह जाती है!

पंजाब में इन "बेअदबी" के मामलों को लेकर सियासत हमेशा से काफ़ी गर्म रही है। सिख धर्म में गुरू ग्रन्थ साहिब के साथ "छेड़छाड़" को शुरू से ही "बेअदबी" की संज्ञा दी गयी है और इसे संगीन अपराध कहा गया है। इतिहास में भी इन "बेअदबी" के मामलों में बहिष्कार और बिरदारी-बाहर करने के सैंकड़ों उदहारण मिल जाते हैं। पंजाबी यूनिवर्सिटी के गुरू ग्रन्थ साहिब अध्ययन विभाग के प्रोफ़ेसर सरबिन्द सिंह ने एक साक्षात्कार में कहा था कि लखपत राय, जो उस वक़्त लाहौर के दीवान थे, ने गुरू ग्रन्थ साहिब के साथ "भौतिक छेड़छाड़" को "बेअदबी" के तौर पर संस्थाबद्ध किया था। यहाँ तक कि उसने 'गुड़' शब्द के इस्तेमाल पर प्रतिबन्ध लगा दिया था क्योंकि वह 'गुरू" से मिलता-जुलता था! 1870 के दशक में सिंह सभा आन्दोलन के शुरू होने से लेकर 1920 में शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के गठन तक सिख धार्मिक आन्दोलन मज़बूत होता चला गया। इसके बाद जरनैल सिंह भिण्डरावाले और खालिस्तानी आन्दोलन के उद्भव के साथ सिख धार्मिक आन्दोलन में एक नया मोड़ आता है और अलगाववादी कट्टरपन्थी राजनीति परवान चढ़ती है। पंजाब में राजनीति में धर्म के हस्तक्षेप का इतिहास भी पुराना है। पूँजीवादी चुनावी दलों ने तो इन "बेअदबी" के मसलों पर हमेशा फ़िरकापरस्ती ही दिखलायी है जिसमें कोई ताज्जुब की बात है भी नहीं। लेकिन तथाकथित क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट ताक़तें भी इन मसलों पर मौक़ापरस्ती दिखला रही हैं।

लेकिन हमेशा ऐसा नहीं था। खालिस्तान आन्दोलन के दौरान पंजाब के क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों ने इस फ़िरकापरस्ती और धार्मिक अलगाववादी राजनीति का डटकर मुक़ाबला किया था और कई शहादतें भी दीं। उन्होंने सिर्फ़ मुँहज़ुबानी ही नहीं बल्कि सड़कों पर उतरकर धार्मिक कट्टरपन्थी और फ़िरकापरस्त ताक़तों का जवाब दिया। यह भी अनायास नहीं था कि खालिस्तानियों के निशाने पर सबसे पहले कम्युनिस्ट ही थे। यहाँ तक कि पूँजीवादी हुक्मरानों में भी कइयों को यह बात स्वीकारनी पड़ी थी कि खालिस्तानी धार्मिक कट्टरपन्थी अलगाववादियों का सबसे बहादुरी से मुक़ाबला क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों ने किया था।

लेकिन जैसे-जैसे इन संगठनों की नरोदवादी राजनीति का पतन होता चला गया, वैसे-वैसे वैचारिक साहस भी जाता रहा है और विशेषकर सिख धार्मिक कट्टरपन्थ के ख़िलाफ़ विरोध की धार भी कुन्द होती चली गयी। इसके कारण राजनीतिक हैं। जिस धनी किसान-कुलक वर्ग की नुमाइन्दगी ये तमाम नव-नरोदवादी संगठन आज करते हैं, वह वर्ग अपनी नैसर्गिक प्रवृत्ति से अपनी आर्थिक शक्तिमत्ता, जातिगत दम्भ और धार्मिक पहचान के कारण ऐसी कट्टरता को पैदा करने की ज़रख़ेज़ ज़मीन देता है। यही कारण हैं कि जोगिन्दर सिंह उग्राहाँ से लेकर दर्शन पाल जैसे लोग और इनके नरोदवादी संगठन "बेअदबी" के नाम पर होने वाली इन हत्याओं के मसलों पर या तो मौक़ापरस्त चुप्पी अख्तियार करते रहे हैं या फिर बीच-बीच की कोई बात करते रहे हैं कि 'बेअदबी तो ग़लत है, लेकिन क़ानून अपने हाथ में नहीं लेना चाहिए' आदि-आदि। इसके अलावा कुछ कायर लोकरंजकतावादी व क़ौमवादी संगठन हैं जो हर मसले में किसी साज़िश को तलाशते फिरते हैं। इन राजनीतिक मसखरों के लिए "बेअदबी" भी साज़िश है, कोरोना भी साज़िश है और कल इनके लिए पूँजीवाद भी एक साज़िश हो जायेगा! दरअसल यह इनका राजनीतिक अवसरवाद है जो पंजाब में सिख धार्मिक कट्टरपन्थ के ख़िलाफ़ बोलने से इन्हें रोकता है; बाक़ी सभी धर्मो के कट्टरपन्थ के ख़िलाफ़ यह अक्सर लोगों को ललकारते रहते हैं! असल बात यह है कि यदि किसी साज़िश के तौर पर भी किसी धार्मिक चिह्न की बेअदबी हो, तो क्या उसकी प्रतिक्रिया में धार्मिक उन्मादी भीड़ द्वारा पाशविक हिंसा और हत्या को कभी कोई क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि सही ठहरा सकता है? क़तई नहीं!

आज आम मेहनतकश जनता को यह समझना होगा कि धर्म के नाम पर किसी की हत्या कर देना किसी भी मापदण्ड से सही नहीं ठहराया जा सकता है। धार्मिक प्रतीकों के तथाकथित अपमान के नाम पर लोगों को मौत के घाट उतार देना किस पैमाने से "न्याय" है? हम किसी मध्ययुग में नहीं जी रहे हैं और कोई भी वस्तु मानवीय जीवन से क़ीमती नहीं हो सकती है! "भावनाओं के आहत होने" का तर्क हर-हमेशा मेहनतकशों को आपस में लड़वाने के लिए हुक्मरानों द्वारा इस्तेमाल किया जाता है। हमें अपने तर्क और विवेक को भावनाओं से ऊपर रखना चाहिए और ऐसे ही किसी के बहकावे में नहीं आना चाहिए। तमाम घटनाओं में हम देख सकते हैं कि आम तौर पर निशाने पर भी आम ग़रीब लोग होते हैं और मोहरे भी आम लोग ही बनते हैं। यह भी याद रखना होगा कि हर प्रकार का कट्टरतावाद मेहनतकशों की एकता क़ायम करने में रुकावट पैदा करता है। आज पंजाब समेत पूरे देश के मज़दूर वर्ग को धार्मिक कट्टरपन्थ और मज़हबी उन्माद की असलियत पहचाननी होगी और इसके ख़िलाफ़ भी अपना मोर्चा खोलना होगा।

पाँच राज्यों में आगामी विधानसभा चुनावों के मद्देनज़र क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग का नारा

(पेज 10 से आगे)

10. सभी चुनावी उम्मीदवारों से पूछें कि चुनाव जीतने पर क्या वे केवल एक कुशल मज़दूर का वेतन लेने और अन्य पूरी आमदनी जनता के विकास फण्ड में डालने के लिए तैयार हैं और अपनी पूरी सम्पत्ति का सार्वजनिक जन-ऑडिट करने को तैयार हैं? क्या वे प्रदेश में न्यूनतम मज़दूरी को बढ़ाकर रुपये 20,000 करने के लिए विधानसभा में संघर्ष करने का लिखित वायदा करने को तैयार हैं? क्या वे विधानसभा में मज़दूर-विरोधी नये लेबर कोड का विरोध करने का लिखित वायदा करने को तैयार हैं? क्या वे मोदी सरकार की समूची निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों का विधानसभा में पुरज़ोर विरोध करने का लिखित वायदा करने को तैयार हैं? यदि वे ऐसा करने को तैयार नहीं हैं, तो मेहनतकश जनता उनका समर्थन क्यों करे?

'मज़दूर बिगुल' क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग और आम मेहनतकश जनता के राजनीतिक अख़बार और उसके राजनीतिक संगठनकर्ता के तौर पर उपरोक्त अपील आम मेहनतकश जनता से करता है। उपरोक्त कार्यभारों के साथ हमारे समय का आम प्रधान कार्यभार है एक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी का निर्माण, जिसके लिए स्वयं राजनीतिक तौर पर शिक्षित होना, प्रशिक्षित होना और जागृत, गोलबन्द व संगठित होना अपरिहार्य है। इसकी शुरुआत 'मज़दूर अध्ययन मण्डलों' के निर्माण से की जा सकती है। हमारे ट्रेड यूनियन संघर्षों के साथ इस राजनीतिक कार्य को करना बेहद ज़रूरी है। बल्कि यह कहना होगा कि अपने ट्रेड यूनियन व आर्थिक संघर्षों को भी हम सही ढंग से राजनीतिक शिक्षा से लैस होकर ही लड़ सकते हैं। इसके विषय में हम आगे 'मज़दूर बिगुल' के पन्नों पर विस्तार से आपसे चर्चा करेंगे। लेकिन तात्कालिक कार्यभार है अपने प्रदेश में साम्प्रदायिक फ़ासीवादी संघ परिवार, अन्य सभी धार्मिक कट्टरपन्थियों व फिरकापरस्त ताक़तों की साज़िशों को कामयाब न होने देना, साम्प्रदायिकता को आम मेहनतकश जनता के बीच ज़रा भी पाँव न जमाने देना और मज़दूर वर्ग के स्वतंत्र राजनीतिक पक्ष को खड़ा करने के लिए संघर्ष करना।

पाँच राज्यों में आगामी विधानसभा चुनावों के मद्देनज़र क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग का नारा

(पेज 1 से आगे)

परीक्षाएँ रद्द हो जाती हैं। लेकिन इस सारी नौटंकी में आम बेरोज़गार युवा आबादी मारी जाती है। निजी क्षेत्र में भी मन्दी के दौर में छँटनी और तालाबन्दी का कहर जारी है और जो नौकरियाँ हैं उनमें गुलामों की तरह मज़दूरों को खटाया जा रहा है। उत्तर प्रदेश में अप्रैल 2020 में बेरोज़गारी दर 22 प्रतिशत के क़रीब जा पहुँची थी। इसमें बहुत बड़ी भूमिका कोरोना महामारी का सरकार द्वारा कुप्रबन्धन था। लेकिन उसके बाद भी 2021 के अन्त तक बेरोज़गारी दर 7 से 8 प्रतिशत के ऊपर रही है। याद रहे ये सरकारी आँकड़ें हैं, जो कि सप्ताह में किसी एक दिन एक घण्टे भी काम करने वाले व्यक्ति को रोज़गारशुदा मानते हैं! अब आप ख़ुद सोचिये कि वास्तव में बेरोज़गारी के हालात क्या होंगे! हम मज़दूर-मेहनतकश तो अपने जीवन के अनुभव से भी इस बात को अच्छी तरह से समझते हैं कि सरकारी आँकड़ें मध्यवर्गीय आबादी को मूर्ख बनाने के लिए बनाए जाते हैं और इससे मेहनतकश आबादी बेवकूफ़ नहीं बनाया जा सकता है।

महँगाई की स्थिति से भी हम सभी वाकिफ़ हैं। इस बार-बार दुहराए जाने वाले जुमले का असली अर्थ जनता को समझ आ रहा है कि महँगाई ने सारे रिकॉर्ड तोड़ दिये हैं! महँगाई ने वाकई सारे रिकॉर्ड तोड़ दिये हैं! एक ओर रसोई गैस की कीमत हज़ार पहुँच रही है, वहीं पेट्रोल सौ का आँकड़ा छूने को बेताब है। भाजपा सरकार ने सरकारी लूट के सारे कीर्तिमान ध्वस्त कर दिये हैं। इस लूट से इकट्ठा सरकारी ख़ज़ाने का इस्तेमाल भी भाजपा सरकार अपने झूठे प्रचार में कर रही है! भाजपा और संघ परिवार अपने असली विचारधारात्मक पिताओं यानी नात्सियों के समान मानते हैं कि किसी झूठ को सौ बार दुहरा दिया जाये तो वह सच बन जाता है! इसलिए विकास, रोज़गार और महँगाई घटाने के बारे में सीधे-सीधे झूठे प्रचारों के होर्डिंग पूरे देश में लटका दिये गये हैं। यहाँ तक कि उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड विधानसभाओं के चुनावों के प्रचार दिल्ली, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तेलंगाना, आन्ध्र प्रदेश, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, बिहार आदि तक में किया जा रहा है! लेकिन असल में भाजपा सरकार महँगाई को और बढ़ाने की नीतियाँ लागू करने के लिए तैयार बैठी है। 1 जनवरी 2022 से जूतों व कपड़ों पर 12 प्रतिशत से ज़्यादा जीएसटी लगा दिया जाएगा यानी 7 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी; एटीएम से मुफ़्त लेनदेन पूरा होने के बाद पैसा निकालने पर 20 की बजाय 21 रुपये का शुल्क लगाया जाएगा; उसी प्रकार खाने-पीने के सामानों में महँगाई दर अक्टूबर 2021 तक 18 प्रतिशत तक पहुँच चुकी थी। **खाद्यान्न की महँगाई में व्यापारियों, आढ़तियों, बिचौलियों, धनी किसानों-कुलकों की जमाखोरी व कालाबाज़ार के अलावा लाभकारी मूल्य (एमएसपी) की एक केन्द्रीय भूमिका है, क्योंकि यह एमएसपी ही है जो कि खाद्यान्न की कीमतों के लिए एक ऊँचा न्यूनतम स्तर फिक्स कर देता है। एमएसपी की माँग धनी किसानों-कुलकों की माँग है और इसीलिए देश के मज़दूर वर्ग ने इस माँग का समर्थन नहीं किया, हालाँकि कई नवनरोदवादी "कम्युनिस्टों" ने इस माँग के समर्थन से मज़दूर वर्ग को भरमाने और बहकाने का काम किया।** यानी खाने-पीने के सामान, ईंधन, कपड़े, जूते सभी महँगे होते जा रहे हैं और इसके पीछे समूचे पूँजीपति वर्ग की लूट की हवस है। आम मेहनतकश इंसान ही समझ सकता है कि इसका उसकी ज़िन्दगी पर क्या असर पड़ रहा है।

कोरोना महामारी की रोकथाम, बेरोज़गारी पर लगाम और महँगाई को कम करने के मामले में पूरी तरह से फिसड्डी साबित हुई भाजपा की मोदी सरकार और उत्तर प्रदेश में भाजपा की योगी सरकार के पास चुनावों में दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है। इसलिए संघ परिवार और भाजपा एक बार फिर से धार्मिक उन्माद की आँधी चलाना चाहते हैं। यही कारण है कि पहले मथुरा में मन्दिर का मसला उठाया गया और जब उसे ज़्यादा हवा नहीं मिल पायी तो फिर ख़ुद नरेन्द्र मोदी ने काशी विश्वनाथ में मन्दिर का मसला उछाला है। बिना नाम लिए मोदी ने यह भी कहा कि 'कुल लोग' गाय को माता नहीं मानते लेकिन 'हमारे लिए' तो गाय माता के समान है। कोई भी समझ सकता है कि 'कुल लोगों' से मोदी का तात्पर्य मुसलमान थे और 'हमारे लिए' से उसका तात्पर्य हिन्दू थे। कहने के लिए सेक्युलर देश का प्रधानमंत्री अगर इस घटिया साम्प्रदायिक भाषा का इस्तेमाल कर रहा है, तो समझा जा सकता है कि जनता के सामने अपना रिपोर्ट कार्ड पेश करने के नाम पर भाजपा सरकार के पास कुछ भी नहीं है।

इसके साथ ही कुछ कुकर्म भाजपा और संघ परिवार खुले तौर पर अपने बैनर तले नहीं कर रहे हैं, बल्कि उसके लिए हिन्दुत्ववादी फ़ासीवाद के तथाकथित हाशिये के उन्मादी पागल तत्वों से करवाने का काम कर रहे हैं। हरिद्वार में धर्म संसद का आयोजन इसी रणनीति का एक अंग था। बेशक इस धर्म संसद में दिखावे के लिए कुछ बातें मोदी के ख़िलाफ़ भी बोलीं गयीं, लेकिन यह पहले से सोच-समझ कर खेला गया कार्ड है। असली इरादा है मुसलमानों व अन्य धार्मिक अल्पसंख्यकों को दुश्मन के तौर पर पेश करना, उनका डर खड़ा करना और साम्प्रदायिकता को भड़का कर वोटों का ध्रुवीकरण करना। इसके पीछे पहला मक़सद था व्यापक हिन्दू मध्यवर्गीय व मेहनतकश आबादी में एक नकली दुश्मन की छवि को खड़ा करना ताकि असली दुश्मन को छिपाया जा सके और दूसरा मक़सद था हिन्दू टुटपुँजिया आबादी और ख़ास तौर पर लम्पट मज़दूर आबादी के दिशाहीन व लक्ष्यहीन तत्वों की भीड़ को उन्माद की लहर में बहाना। केवल हिन्दुत्ववादी फ़ासीवाद की लहर खड़ी करके ही भाजपा सत्ता में आने का सपना देख सकती है क्योंकि उसके विकास के ढोल की पोल पूरी तरह से खुल चुकी है।

धार्मिक उन्माद फैलाने के अलावा, नरेन्द्र मोदी हर जगह चुनाव प्रचार में हज़ारों करोड़ की नयी विकास परियोजनाओं के रिब्बन काटते घूम रहे हैं! देश की जनता जानती है कि मोदी ऐसे रिब्बन पिछले सात साल से काट ही रहा है, लेकिन वह विकास किसी चौथे जगत में हो रहा है, क्योंकि जल, थल और नभ में तो दिख नहीं रहा है! विकास के नाम पर केवल उन ही परियोजनाओं पर काम होता है, जो सीधे पूँजीपति वर्ग को लाभ पहुँचाती हैं। उसी की कुछ जूठन कभी-कभार जनता को भी मिल जाती है, हालाँकि जनता से उसकी पूरी कीमत वसूली जाती है। मसलन, उत्तर प्रदेश सरकार अब आगरा एक्सप्रेस वे पर दोपहिया वाहनों से भी टोल टैक्स वसूल रही है। इसी प्रकार यदि पूँजीपतियों के लिए फ़ायदेमन्द किसी योजना का कुछ लाभ छनकर आम जनता तक भी पहुँचता है, तो उसकी पूरी कीमत पूँजीपति वर्ग आम जनता से वसूलता है। मोदी सरकार और योगी सरकार तो इस प्रकार की लूट में ख़ास तौर पर माहिर है।

ये नाकामियाँ ही हैं, जिसके कारण आज मोदी सरकार और योगी सरकार उत्तर प्रदेश व अन्य राज्यों के विधानसभा चुनावों के मद्देनज़र एक बार फिर से और नये सिरे से धार्मिक उन्माद फैलाकर साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की घटिया साज़िशों में लग गयीं हैं। लेकिन अफ़सोस की बात यह है कि कई बार हमारे मज़दूर-मेहनतकश भाई और बहन भी इस हिन्दुत्ववादी फ़ासीवादी साजिश का शिकार हो जाते हैं। कई बार वे भी अपनी धार्मिक भावनाओं में बहकर इस प्रकार के फ़ासीवादी प्रचार का शिकार हो जाते हैं और अन्य धर्मों के अपने ही वर्ग भाइयों-बहनों को अपने से अलग और अपना दुश्मन समझने लगते हैं। **इससे किसको लाभ मिलता है? सिर्फ़ और सिर्फ़ आपके मालिकों के पूरे वर्ग को, पूँजीपतियों को, टाटाओं-बिड़लाओं-अम्बानियों से लेकर छोटे मालिकों और ठेकेदारों के पूरे वर्ग को। हमें अपने ही वर्ग भाइयों-बहनों के ख़िलाफ़ भड़काया जाता है और हम उनके ही ख़ून के प्यासे हो जाते हैं। क्या अतीत में कई बार हम इस ग़लती की कीमत नहीं चुका चुके हैं? क्या आपको पता नहीं कि हमेशा साम्प्रदायिक तनाव और दंगों की कीमत आम मेहनतकश जनता को अपने जान-माल से चुकानी पड़ती है? क्या आपने किसी दंगे में कभी किसी योगी, सिंघल, मोदी या फिर ओवैसी का घर जलते या उनके परिजनों को मरते देखा है? नहीं! हम साम्प्रदायिक उन्माद में पागल हो कर अपने ही भाइयों-बहनों के ख़ून की होली खेलते हैं और साम्प्रदायिक फ़ासीवादी और धार्मिक कट्टरपन्थी हमारी चिताओं पर रोटी सेंकते हैं।** गोरख पाण्डेय की इन पंक्तियों को याद रखें:

इस बार दंगा बहुत बड़ा था
ख़ूब हुई थी
ख़ून की बारिश
अगले साल अच्छी होगी
फसल
मतदान की।

ज़रा सोचिये साथियो: क्या एक हिन्दू पूँजीपति, मालिक, ठेकेदार या धनी दुकानदार का वर्ग हित किसी हिन्दू मज़दूर से साझा है, या हिन्दू समेत किसी भी धर्म के मज़दूर और मेहनतकश का वर्ग हित अपस में साझा है? महँगाई बढ़ने पर हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, हर धर्म के मज़दूर पर एक ही असर होता है: उसकी ज़िन्दगी बद से बदतर होती जाती है। और बढ़ती महँगाई का हिन्दू पूँजीपतियों समेत समूचे पूँजीपति वर्ग पर एक ही असर होता है: बढ़ता मुनाफ़ा। बढ़ती बेरोज़गारी का हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई समेत हर मज़दूर पर एक ही असर होता है: उसकी औसत मज़दूरी घटती जाती है और उसकी आमदनी कम होती जाती है। लेकिन हिन्दू पूँजीपतियों समेत समूचे पूँजीपति वर्ग के लिए इसका उल्टा असर होता है: मज़दूरी-उत्पादों को छोड़कर अन्य सभी मालों के मामले में महँगाई बढ़ने से उनकी मुनाफ़े की दर इससे बढ़ती है। मज़दूरी-उत्पादों (यानी वे उत्पाद जो मज़दूर अपनी श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन के लिए अनिवार्यत: ख़रीदते हैं) के मामले में भी जब मज़दूर वर्ग अपनी वास्तविक मज़दूरी को क़ायम नहीं रख पाता, तो महँगाई बढ़ने पर पूँजीपतियों को फ़ायदा ही होता है क्योंकि कुल उत्पादित मूल्य में पूँजीपतियों का हिस्सा बढ़ता है और मज़दूरों का हिस्सा घटता है। जाहिर है, मज़दूरी-उत्पादों की महँगाई को लगातार बढ़ने देना पूँजीपति वर्ग के हित में नहीं होता है क्योंकि एक हद के बाद इसके कारण उसे मज़दूरी को बढ़ाना ही पड़ता है और इससे उसके मुनाफ़े की दर में कमी आती है। लेकिन तात्कालिक तौर पर, वास्तविक मज़दूरी के न बढ़ने की सूरत में, मज़दूरी-उत्पादों की कीमतों के बढ़ने का फ़ायदा भी पूँजीपति वर्ग फ़ौरी तौर पर उठाता है। लुब्बेलुआब यह कि बढ़ती भुखमरी, ग़रीबी, महामारियाँ, अशिक्षा आदि का सभी धर्मों के मज़दूर वर्ग पर नुकसानदेह प्रभाव पड़ता है तो वहीं सभी धर्मों के पूँजीपति, धनी व्यापारी, धनी कुलक व पूँजीवादी किसानों को इसका लाभ मिलता है।

सभी धर्मों के मज़दूरों के एक हित हैं और इस बात को हम मज़दूर जितनी जल्दी समझ लें, उतना बेहतर है। 1986 के राम मन्दिर आन्दोलन के समय से अब तक के 35 वर्षों में बार-बार धार्मिक कट्टरपन्थी उन्माद और साम्प्रदायिक फ़ासीवाद की लहर में बहकर मज़दूर आबादी को बरबादी और तबाही के अलावा कुछ हासिल नहीं हुआ है, जबकि हमारे देश में अमीरों धन्नासेठों के तिजोरियाँ भरती गयीं हैं। इसलिए इस बार यह ग़लती नहीं होने देनी है। वरना मज़दूर वर्ग का फिर से एक भारी नुक़सान होगा।

मज़दूर वर्ग सही मायने में क्रान्तिकारी सेक्युलर विचारों का वाहक भी होता है। यह विचार पैदा तो पूँजीपति वर्ग ने अपने क्रान्तिकारी दौर में किया था, लेकिन अपनी पतनशीलता, ह्रासमानता, परजीविता और मरणासन्नता के दौर में वह जनता को साम्प्रदायिकता और धार्मिक कट्टरपन्थ की सड़ी सौग़ात ही दे सकता है। दूसरी ओर, सर्वहारा वर्ग कोई शोषक वर्ग नहीं होता, निजी सम्पत्ति और पूँजी से वंचित होता है और इसलिए सबसे अधिक क्रान्तिकारी होता है। वह सच की राजनीति करता है और उसका हित सच को छिपाने में नहीं बल्कि सच को उजागर करने में है। सेक्युलरिज़्म का सही मायने में अर्थ क्या है? धर्म का मसला हर व्यक्ति का अपना निजी मसला होता है। कोई भी धर्म मानना या कोई धर्म न मानना हर व्यक्ति का अपना निजी अधिकार होता है। किसी भी धर्म को राजनीति और सामाजिक जीवन से मिलाये जाने का हम मज़दूरों को विरोध करना चाहिए। यही सेक्युलर होने का सही अर्थ है। हमें धर्म और आस्था को अपने सामाजिक जीवन और राजनीति से दूर रखना चाहिए। कोई अपनी घर की चौहद्दियों में कौन से मज़हब को मानता है, कौन-सी प्रार्थना पद्धति अपनाता है या फिर वह नास्तिक है, यह सामाजिक जीवन और राजनीति का मसला है ही नहीं। जब भी इसे सामाजिक जीवन और राजनीति का मसला बनाया जाता है तो बेगुनाह मेहनतकश लोगों का ख़ून बहता है और कोई न कोई मज़दूर-विरोधी व मेहनतकश-विरोधी ताक़त सत्ता में पहुँचती है। क्या अभी तक का तजुरबा इस बात को सही साबित नहीं करता है? आप सभी जानते हैं कि यही सच है।

इसलिए अपने गुस्से, अपनी हताशा और अपने असन्तोष का

(पेज 10 पर जारी)

पाँच राज्यों में आगामी विधानसभा चुनावों के मद्देनज़र क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग का नारा

(पेज 9 से आगे)

इस्तेमाल संघ परिवार व भाजपा जैसे साम्प्रदायिक फासीवादियों को मत करने दीजिये! शोषण, लूट, बदहाली, अनिश्चितता से हम श्रान्त-क्लान्त हैं, थके और चिड़चिड़ाए हुए हैं, गुस्से में हैं, लेकिन हमें अपने असन्तोष और रोष को सही दिशा देनी है न कि संघ परिवार और भाजपा जैसे लुटेरों, ठगों और मदारियों को अपने राजनीतिक फ़ायदे के लिए उसका इस्तेमाल करने देना है। हमारे ही भाइयों-बहनों को हमारा दुश्मन बना कर पेश करने का मौक़ा उन्हें मत दीजिये! अपने असली दुश्मन को पहचानिये और उसके ख़िलाफ़ धर्म और जाति की दीवारों को गिराकर संगठित होने के लिए संघर्ष करिये। अपने गुस्से और नफ़रत को सही दिशा दीजिये और उसे मौजूदा समाज और व्यवस्था को बदल देने की ताक़त में तब्दील करिये। एक अकेले मज़दूर की समाज में कोई ताक़त नहीं होती। कुछ मज़दूरों की भी समाज में कोई ताक़त नहीं होती। एक मज़हब के मज़दूरों की भी अपने आप में कोई ताक़त नहीं होती। एक अकेले मज़दूर के तौर पर या किसी एक समुदाय के मज़दूर के तौर पर वह पूँजी की गुलामी करने और अपने मालिक की मातहती करने को मजबूर होता है। इस बात को हमेशा याद रखिये। जब तक वह धर्म, जाति, भाषा व क्षेत्र के आधार पर बँटा रहेगा तब तक वह पूँजी की गुलामी करने को मजबूर रहेगा। लेकिन समूचे मज़दूर वर्ग की सामूहिक शक्ति से बड़ी दुनिया में कोई शक्ति नहीं होती है। धर्म, जाति, क्षेत्र, भाषा और कौम की दीवारें गिराकर मज़दूर वर्ग द्वारा अपनी वर्गीय एकता स्थापित करने के बाद उसकी शक्ति का मुकाबला करना पूँजीपति वर्ग के लिए मुश्किल हो जाता है। इसीलिए फ़ासीवादी व पूँजीवादी हुक्मरान हमें कभी धर्म, कभी जाति, कभी क्षेत्र तो कभी भाषा के नाम पर बाँटते हैं। इस बात को आज समझना ही होगा।

उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, पंजाब, गोआ और मणिपुर के विधानसभा चुनावों में जनता के समक्ष कोई प्रदेशव्यापी विकल्प नहीं है। ऐसे में मेहनतकश अवाम को क्या करना चाहिए? जिस भी क्षेत्र में *मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी राजनीति* का कोई नुमाइन्दा मौजूद हो, हमें उसे चुनना चाहिए। जहाँ पर ऐसा कोई नुमाइन्दा न हो, वहाँ मज़दूरों और मेहनतकश आबादी को नोटा का बटन दबाकर यह सन्देश हुक्मरानों तक पहुँचाना चाहिए कि हम उन्हें शासन चलाने योग्य या अपना प्रतिनिधि होने योग्य नहीं मानते हैं। मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी राजनीति का अर्थ है एक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी की राजनीति जो कि एक सही राजनीतिक कार्यदिशा और क्रान्तिके कार्यक्रम से लैस हो। क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी माकपा, भाकपा, भाकपा (माले) लिबरेशन आदि जैसी संसदीय वामपन्थी पार्टी, यानी मज़दूर वर्ग से ग़द्दारी करने वाली पार्टियाँ नहीं होतीं जो कि नाम से कम्युनिस्ट होती हैं और नकली लाल झण्डे से मज़दूर वर्ग को ठगकर वास्तव में पूँजीपति वर्ग की ही सेवा करती हैं।

क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी सर्वहारा वर्ग की वह पार्टी होती है जो इस सच्चाई को समझती है कि चुनावों के ज़रिए पूँजीपति वर्ग सर्वहारा वर्ग को अपनी राज्यसत्ता नहीं सौंपता है। सर्वहारा वर्ग पूँजीवादी राज्यसत्ता का ध्वंस करके ही अपनी सर्वहारा राज्यसत्ता की स्थापना कर सकता है और यह एक समाजवादी मज़दूर क्रान्ति के ज़रिए ही सम्भव है, किसी चुनाव के ज़रिए नहीं। **इतिहास में कभी भी किसी शोषक वर्ग ने राज्यसत्ता चुनाव के ज़रिए जनता के हाथों में नहीं सौंपी है। इतिहास में कभी भी व्यवस्थागत परिवर्तन व सामाजिक-आर्थिक रूपान्तरण चुनावों के ज़रिए नहीं हुए हैं और न ही हो सकते हैं।** लेकिन फिर भी क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी संसद व विधानसभाओं के चुनावों में अपने प्रतिनिधियों को खड़ा करती है। क्यों? क्योंकि मज़दूर वर्ग को हर राजनीतिक क्षेत्र में अपनी स्वतंत्र राजनीति के साथ अपनी मौजूदगी दर्ज करानी चाहिए। यदि ऐसा नहीं होगा तो मज़दूर आबादी का बड़ा हिस्सा मालिकों-पूँजीपतियों की इस या उस पार्टी का पिछलग्गू बनता है। केवल सर्वहारा वर्ग के उन्नत क्रान्तिकारी तत्वों द्वारा इस बात को समझने से संसद व विधानसभाएँ अप्रासंगिक नहीं हो जातीं कि संसद-विधानसभाओं के ज़रिए क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हुआ करते हैं और सरकार ही समूची राज्यसत्ता नहीं होती, बल्कि सरकार के साथ सेना-पुलिस व सशस्त्र बलों, नौकरशाही, न्यायपालिका के स्थायी निकायों को मिलाकर समूची पूँजीवादी राज्यसत्ता बनती है। साथ ही, संसद व विधानसभा चुनावों में रणकौशलात्मक (टैक्टिकल) हस्तक्षेप करके ही मज़दूर वर्ग का उन्नत हिस्सा समूचे मज़दूर वर्ग और समूची मेहनतकश जनता के सामने पूँजीवादी जनवाद और उसकी सारी संस्थाओं और प्रक्रियाओं की असलियत को उजागर कर सकता है, यानी पूँजीवादी चुनावों की असलियत और साथ ही संसद व विधानसभाओं की असलियत।

इन दो कारणों से क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी पूँजीवादी चुनावों के दौरान घर नहीं बैठी रहती और न ही अपरिपक्व तरीक़े से चुनावों के बहिष्कारों का आह्वान करती है जिसे कि जनता ही नहीं सुनती; बल्कि वह अपने प्रतिनिधियों को इन चुनावों में खड़ा करती है, चुनाव लड़ती है, इसके ज़रिए जनता के बीच व्यापक क्रान्तिकारी प्रचार कर पूँजीवादी व्यवस्था की असलियत को उजागर करती है और चुनाव जीतने की सूरत में संसद और विधानसभाओं के भीतर अपने क्रान्तिकारी हस्तक्षेप के ज़रिए उनकी असलियत, यानी उनके पूँजीवादी चरित्र, को उजागर करती है। इसके ज़रिए व्यापक मेहनतकश जनता पूँजीवादी व्यवस्था की सीमाओं को समझती है और साथ ही क्रान्तिकारी रास्ते से क्रान्तिकारी परिवर्तन की अनिवार्यता को भी समझती है। इसलिए क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी अपने समूचे आन्दोलन में क्रान्तिकारी जनान्दोलनों के साथ-साथ पूँजीवादी जनवाद की संस्थाओं और प्रक्रियाओं में भी रणकौशलात्मक हस्तक्षेप करती है और वहाँ पर भी राजनीतिक रूप से स्वतंत्र सर्वहारा लाइन और पोजीशन के साथ मौजूद रहती है। समाज के हर राजनीतिक व विचारधारात्मक क्षेत्र में सर्वहारा वर्ग की स्वतन्त्र राजनीतिक अवस्थिति की मौजूदगी की ज़रूरत को सर्वहारा वर्ग के महान शिक्षकों ने स्पष्ट तौर पर समझाया था। केवल और केवल जनता के व्यापक जनसमुदायों के क्रान्तिकारी परिस्थिति में सर्वहारा पार्टी के नेतृत्व में क्रान्ति के लिए तैयार होने की सूरत में ही क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी संसद और विधानसभाओं के बहिष्कार का नारा देती है और वास्तव में केवल तभी वह एक जन नारा (मास स्लोगन) बन सकता है जिस पर व्यापक मेहनतकश जनता की बहुसंख्या अमल करती है। उसके बिना ऐसा करना हास्यास्पद "वामपन्थी" बचकानापन है।

आज कोई देशव्यापी क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी यानी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी मौजूद नहीं है। क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट शक्तियाँ विचारधारात्मक विभ्रमों, ग़लत राजनीतिक कार्यदिशा और ग़लत कार्यक्रम के हावी होने के कारण खण्ड-खण्ड में विभाजित हैं। **ऐसे में, आज का प्रधान कार्यभार है एक देशव्यापी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी का निर्माण और गठन। यह तभी सम्भव है जबकि सही विचारधारात्मक समझ, सही राजनीतिक कार्यदिशा और सही कार्यक्रम को सूत्रबद्ध किया जाय, यानी मार्क्सवादी विचारधारा और विज्ञान की समझदारी विकसित की जाये और व्यापक जनसमुदायों के बीच क्रान्तिकारी जनदिशा को लागू किया जाये।** इनके ज़रिए ही एक सही राजनीतिक कार्यदिशा और कार्यक्रम को सूत्रबद्ध किया जा सकता है। इसी के ज़रिए देश के मज़दूर आन्दोलन में एक क्रान्तिकारी विचार-केन्द्र को खड़ा किया जा सकता है, जिसके इर्द-गिर्द नये क्रान्तिकारी प्रयोगों के प्रयोग-केन्द्र की स्थापना की जा सकती है और नये क्रान्तिकारी तत्वों को मज़दूर वर्ग व मध्यवर्गीय क्रान्तिकारी युवा व बौद्धिक आबादी से शामिल कर नये भर्ती-केन्द्र की स्थापना की जा सकती है। एक नया क्रान्तिकारी विचार-केन्द्र, एक नया क्रान्तिकारी प्रयोग-केन्द्र और एक नया क्रान्तिकारी भर्ती-केन्द्र खड़ा करके देश में एक नयी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण और गठन को अंजाम देना: यही आज का प्रधान कार्यभार है। यह लम्बा काम होने के बावजूद हमारा तात्कालिक कार्यभार है। इस पर आज से ही सतत्, अनथक और मेहनत के साथ काम करना होगा।

इसी सन्दर्भ में मौजूदा विधानसभा चुनावों में क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग देश की समूची मेहनतकश आबादी से क्या कहेगा? मौजूदा विधानसभा चुनावों के मद्देनज़र व्यापक मेहनतकश आबादी के लिए क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग का तात्कालिक सन्देश बिल्कुल स्पष्ट है:

1. संघ परिवार, भाजपा और मोदी सरकार व योगी सरकार द्वारा साम्प्रदायिक फ़ासीवादी व धार्मिक कट्टरपन्थी लहर के ज़रिए ध्रुवीकरण की साजिश का शिकार मत बनो!

2. साम्प्रदायिक फासीवादियों व सभी धर्मों के धार्मिक कट्टरपन्थियों की असलियत को, यानी उनके पूँजीवादी चरित्र को पहचानो! ये जनता को धर्म के नाम बाँटकर वास्तव में धन्नासेठों की ही सेवा करते हैं और उनके वफ़ादार कुत्ते होते हैं।

3. सभी धर्मों व अन्य सामाजिक समुदायों की व्यापक मेहनतकश आबादी के हित एक हैं! उनकी एकजुटता कायम करो! उनमें फूट डालने की फ़ासीवादी, धार्मिक कट्टरपन्थी व जातिवादी साजिशों को कामयाब मत होने दो!

4. अपने असली दुश्मन को पहचानो! तुम्हारा असली दुश्मन समूचा पूँजीपति वर्ग है, जिसमें कि बड़े-छोटे-मँझोले कारखानेदार पूँजीपति, धनी व्यापारी, धनी पूँजीवादी किसान व कुलक, ठेकेदार-जॉबर, शेयर दलाल, प्रापर्टी डीलरों व अन्य दलालों का पूरा संस्तर, पूँजीवादी पार्टियों के नेता, उच्च व उच्च-मध्यम नौकरशाह, सेना-पुलिस के ऊँचे अफ़सर, आदि सभी शामिल हैं। यह ही है जो तुम्हारे ख़ून को सिक्कों में ढालकर ही अपनी तिजोरियाँ भरता है, चाहे उसका धर्म या जाति कुछ भी हो! आज इस लुटेरे वर्ग की सबसे सक्षम तरीक़े से भाजपा व संघ परिवार के साम्प्रदायिक फ़ासीवादी सेवा कर रहे हैं क्योंकि मन्दी के दौर में पूँजीपति वर्ग को अपनी नग्न तानाशाही, "मज़बूत नेतृत्व", की ज़रूरत है।

5. 'मन्दिर-मस्जिद' व 'हिन्दू-मुसलमान' के नाम पर फैलाए जा रहे उन्माद से ऊपर उठकर अपने असली वर्ग हितों को पहचानो और उनके आधार पर एकता कायम करो!

6. धर्म को हर व्यक्ति का व्यक्तिगत मसला मानो और उसे सामाजिक जीवन व राजनीति में घुसाने की हरेक हरक़त का विरोध करो, चाहे वह साम्प्रदायिक फ़ासीवादी संघ परिवार व भाजपा करे, या फिर धार्मिक कट्टरपन्थी ओवैसी जैसी ताक़तें करें!

7. मौजूदा चुनावों में जहाँ कहीं सही मायने में किसी ऐसी क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी, यानी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी का उम्मीदवार हो जिसके पास एक सही राजनीतिक कार्यदिशा और कार्यक्रम हो, उसे वोट दो, अन्यथा नोटा का बटन दबाकर देश के पूँजीवादी शासक वर्ग के प्रति अपने अविश्वास को व्यक्त करो! अपने आप में महज़ इससे कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं होता, लेकिन चुनाव की प्रक्रिया में रणकौशलात्मक हस्तक्षेप के बिना मज़दूर वर्ग व व्यापक मेहनतकश आबादी इस या उस पूँजीवादी पार्टी का पिछलग्गू बनती है और उसका स्वतंत्र राजनीतिक पक्ष नहीं खड़ा होता, जिसका फ़ायदा हमेशा आम तौर पर पूँजीपति वर्ग को होता है।

8. अपने गली-मुहल्लों में मेहनतकश संघर्ष समितियाँ बनाएँ और किसी भी रूप में साम्प्रदायिक या धार्मिक कट्टरपन्थी प्रचार करने वाले चुनावी मेंढकों (यानी पूँजीवादी पार्टियों के उम्मीदवारों) की सभाओं आदि का पूर्ण बहिष्कार करें और जहाँ सम्भव हो, उन्हें अपने गली-मुहल्लों व कालोनियों में न घुसने दें। अपने बीच 'मन्दिर-मस्जिद', 'हिन्दू-मुसलमान', 'बाबर-अकबर-औरंगज़ेब बनाम महाराणा प्रताप-राणा सांगा', आदि की बात भी न होने दें। ये सारी बातें असली मसलों से मज़दूरों-मेहनतकशों को बहकाने के लिए की जाती हैं ताकि वे अपने असली मुद्दों व मसलों पर न सोच सकें।

9. सभी चुनावी उम्मीदवारों से कहें कि वे अपनी चुनावी फण्डिंग का पूरा ब्यौरा पहले जनता के सामने रखें और फिर बताएँ कि जो उम्मीदवार व पार्टियाँ पूँजीपतियों व उनके चुनावी ट्रस्टों से करोड़ों-करोड़ रुपये लेती हैं, वे जनता के लिए काम कैसे कर सकते हैं? वे तो चुनें जाने पर अम्बानी, अडानी, टाटा-बिड़ला के लिए ही निजीकरण व उदारीकरण की नीतियाँ लागू करेंगी, जिनके कारण महँगाई, बेरोज़गारी और आर्थिक अनिश्चितता बढ़ रही है! जो अपनी पूरी चुनावी फण्डिंग जनता के सामने न खोले उसका भी पूर्ण बहिष्कार करें।

(पेज 8 पर जारी)

चीले में गाब्रिएल बोरिच की जीत के वहाँ के मज़दूर वर्ग के लिए निहितार्थ

इस जीत पर भारत के सुधारवादी वाम बुद्धिजीवी इतने ख़ुश क्यों हैं?

– लता

भारत में नवउदारवादी नीतियों का जो निरंकुश दौर चल रहा है वह दक्षिण अमेरिकी देश चीले में भी लम्बे समय से बना हुआ है। नवउदारवादी नीतियाँ जिस प्रकार समाज के एक छोर पर धन-समृद्धि व अय्याशी के ढेर और दूसरे छोर पर ग़रीबी, बदहाली और दरिद्रता का अम्बार लगाती हैं, उसमें अमीर और अमीर होता चला जाता है ग़रीब और ग़रीब। एशिया, अफ़्रीका व लातिन अमेरिका के देशों में यह ध्रुवीकरण बेहद तीखा है। चीले में नवउदारवादी नीतियों के 40 वर्षों के काल ने ऐसे ही भयंकर आर्थिक ध्रुवीकरण को जन्म दिया है। 2019 में अमीर और ग़रीब की बढ़ती खाई, महँगाई और निजीकरण के ख़िलाफ़ देशभर में ज़बर्दस्त प्रतिरोध प्रदर्शन हुए थे जो कई बार हिंसक भी हो उठे थे। लोगों का ग़ुस्सा सड़कों पर फूट पड़ा और सरकार ने इन प्रतिरोधों का बर्बर दमन भी किया था। साल 2021 के राष्ट्रपति चुनावों में गाब्रियेल बोरिच से चीले की जनता 2019 की माँगों के पूरा होने की उम्मीद कर रही है। छात्र राजीनति से उभरे अबतक के सबसे नौजवान राष्ट्रपति बोरिच से चीले की आम जनता आस लगाये है कि वह उनकी आर्थिक-सामाजिक समस्याओं को दूर करेगा।

जनता के कष्टों को दूर करने के लिए राष्ट्रपति बोरिच ने बड़े-बड़े वायदे किये हैं। यदि उसके किये वायदों को उसकी लोकप्रियता से अलग कर हम विश्लेषण करते हैं तो पायेंगे कि उसके वर्तमान वायदे किसी भी रूप में मज़दूरों और आम मेहनतकशों के लिए कोई ठोस कार्यक्रम नहीं देते। कुछ लोकरंजक वायदों के अलावा उसका अभियान धुर दक्षिणपन्थी प्रतिद्वन्द्वी खोसे आन्तोनियों कास्त को ख़तरनाक साबित करने की ओर मुड़ जाता था। ऐसे में जब दुनियाभर का मीडिया बोरिच को वाम नेता या वाम की ओर झुकाव रखनेवाला नेता दिखा रही है तो हमें ऐसी राजनीति को समझना ज़रूरी है क्योंकि ऐसी उम्मीदों का झूठा स्वर्ग लिये नेता बीच-बीच में हमारे बीच भी उभरते रहते हैं। पिछले लगभग पन्द्रह वर्ष पूरे विश्व समेत विशेष तौर पर लातिन अमेरिका में पूँजीवादी आर्थिक संकट के परिणामों के साक्षी रहे हैं। ये परिणाम हैं बेरोज़गारी, महँगाई और आर्थिक असुरक्षा व अनिश्चितता। लातिन अमेरिका में इसकी प्रतिक्रिया के तौर पर वाम लोकरंजकतावादी राजनीतिक शक्तियों का उभार होता रहा है, हालाँकि उनमें आपस में काफ़ी अन्तर हैं। चूँकि कोई क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट विकल्प मौजूद नहीं है, इसलिए चुनने के लिए जनता के पास साम्राज्यवाद के साथ गठजोड़ रखने वाली फ़ासीवादी या धुर दक्षिणपन्थी ताक़तों के अलावा किसी न किसी क़िस्म की वाम लोकरंजकतावादी राजनीतियाँ होती हैं। लातिन अमेरिका में साम्राज्यवाद-विरोधी जनसंघर्षों का एक लम्बा इतिहास रहा है। इसलिए जनता का झुकाव अक्सर ही उन शक्तियों के प्रति होता है, जोकि साम्राज्यवादपरस्त धुर दक्षिणपन्थी शक्तियों के विपरीत खड़ी होती हैं। इनमें से अधिकांशतः किसी न किसी क़िस्म का सुधारवादी वाम लोकरंजकतावाद हुआ करता है, जो कि साम्राज्यवाद के विरुद्ध तमाम रैडिकल बातें करने के बावजूद घरेलू अर्थव्यवस्था में अधिक से अधिक टुटपुँजिया सुधारवाद के कार्यक्रम तक जाता है और अक्सर उसे भी लागू नहीं कर पाता है। इस प्रकार की राजनीतिक धाराओं को पस्तहिम्मती और विचारधारात्मक विभ्रम के शिकार दुनियाभर के संसदीय वामपन्थी और यहाँ तक कि कई बार कम्युनिस्ट भी क्रान्तिकारी समझकर तालियाँ बजाते हैं। लेकिन उनका यह हर्षातिरेक हमेशा ही कुछ ही समय में मरघटी सन्नाटे में तब्दील हो जाता है।

वैसे तो बोरिच कभी भी अपने आप को कम्युनिस्ट नहीं कहता और न ही वाम समर्थक। वह अपने आप को "नर्म समाजवादी" कहता है। इसके उभार और वायदों को देखते हुए हम उसे वाम लोकरंजकवाद की श्रेणी में ही रख सकते हैं। लेकिन आम तौर पर लोकरंजकतावादी जिस तरह से लम्बे-चौड़े वायदे करते हैं उसकी तुलना में बोरिच वायदों में भी फूँक-फूँककर क़दम रख रहा है। उदाहरण के लिए वह 'आरोही कर व्यवस्था' (बढ़ती आय के साथ बढ़ते कर) लागू करने और नवउदारवादी नीतियों के ख़ात्मे की बात तो करता है लेकिन देश के महत्वपूर्ण आर्थिक क्षेत्रों जैसे ताँबे की खदानों, लिथियम की खानों आदि के राष्ट्रीकरण की कोई बात नहीं करता। अधिक से अधिक आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि में ज़्यादा व्यय करने और व्यापार पर नियंत्रण करने की बातें कर रहा है। बस एक स्पष्ट वायदा बोरिच ने किया है और वह है निजी पेंशन फ़ण्ड को समाप्त करना। उसके आर्थिक कार्यक्रम का उतना समाजवादी चरित्र भी नहीं है, जितना कि चीले के भूतपूर्व समाजवादी राष्ट्रपति आयेन्दे का था। यह एक मुश्किल से उदारवादी कल्याणवादी कार्यक्रम है और उस पर भी बोरिच कितना अमल करेगा यह प्रश्नचिह्नों के दायरे में है।

बोरिच की जीत के परिणाम आते ही शेयर बाज़ार लुढ़ककर 6.8 पर आ गया और पेसो (चीले की मुद्रा) की तुलना में डॉलर अब तक के उच्चतम स्तर पर पहुँच गया। इसके साथ ही बोरिच की भाषा में भी नर्मी आ गयी। राष्ट्रपति चुनाव के नतीजों के बाद अपने पहले भाषण में उसने धुर-दक्षिणपन्थी प्रतिद्वन्द्वी खोसे आन्तोनियो कास्त को भी साथ मिलकर काम करने को आमंत्रित कर दिया। कास्त न सिर्फ़ धुर दक्षिणपन्थी बल्कि वह खुले तौर पर देश के सबसे बर्बर तानाशाह पिनोचे की नीतियों का खुले तौर पर समर्थक है। पिनोचे ने 1980 के दशक में नवउदारवादी नीतियों को बेलगाम लागू किया था। इसके अलावा विरोध करने वालों का हिंसक दमन किया था। 3000 से अधिक लोग ग़ायब हुए और कई मारे गये थे। इनमें सबसे अधिक कम्युनिस्ट थे। बोरिच का कहना था "हम सभी का जनता के पक्ष में एक साथ खड़े होना चीले के भविष्य की ज़रूरत है, साथ ही नयी सरकार की शुरुआत के लिए विभिन्न विचारों और प्रस्तावों में विश्वास करना होगा।" यहाँ विभिन्न विचारों से उसका इशारा दक्षिणपन्थ से ही है क्योंकि कम्युनिस्ट पार्टी तो उसे पहले ही समर्थन दे चुकी है। बोरिच आगे कहता है कि "खोसे आन्तोनियो कास्त के साथ विशेष तौर पर अपने मतभेदों को जानते हुए भी हमें पता है कि हम दूरियों को कैसे कम करेंगे ताकि हमारे देशवासी बेहतर जीवनयापन कर सकें।" जब सामने खड़े समर्थकों ने प्रतिरोध किया तो ज़ोर देकर बोरिच ने कहा "खोसे आन्तोनियो कास्त भी।"

कास्त जिस राजनीति का प्रतिनिधित्व करता है वह नवउदारवादी नीतियों को बेरोक-टोक लागू करने का हिमायती है। कास्त इजारेदार पूँजीपति वर्ग का राजनीतिक प्रतिनिधि है और साम्राज्यवाद के साथ क़रीबी रिश्ता रखने का हामी है। इस वर्ग और इसके प्रमुख प्रतिनिधि के आम जनता के समर्थन में आने जैसी कोई चीज़ न तो कभी सम्भव है और न होने जा रही है। लेकिन फिर बोरिच जिसे आम मेहनतकश आबादी का भारी समर्थन प्राप्त है वह ऐसी बातें क्यों कर रहा है?

चुनाव जीतना अलग खेल है और सरकार चलाना अलग। जैसे आयेन्दे का इतिहास हम सभी जानते हैं वैसे ही बोरिच को भी यह इतिहास पता है। बोरिच की तरह ही आयेन्दे भी कम्युनिस्ट पार्टी के समर्थनवाली सरकार बनाकर कुछ कल्याणकारी और जनपक्षधर नीतियाँ लागू कर रहे थे। वह भी औद्योगिक क्षेत्र और खदानों के राष्ट्रीकरण की बात कर रहे थे। साथ ही, आयेन्दे बोरिच की तुलना में कहीं ज़्यादा रैडिकल नीतियों को लागू करने का प्रयास कर रहे थे। लेकिन साथ ही उन्होंने धुर दक्षिणपन्थी ताक़तों और सैन्य तख़्तापलट के ख़तरों के बावजूद जनता को सशस्त्र करने से सीधे इन्कार कर दिया था। नतीजतन, जब साम्राज्यवाद की शह पर सैन्य तख़्तापलट हुआ तो उस कल्याणवादी शासन की रक्षा करने में भी वह नाकाम रहे। 1973 में औगुस्तो पिनोचे के नेतृत्व में अमेरिका समर्थित तख़्तापलट हुआ और आयेन्दे राष्ट्रपति भवन में लड़ते हुए मारे गये। इतिहास अपने आपको दुहराता है, लेकिन पहले त्रासदी के रूप में और बाद में प्रहसन के रूप में। बोरिच एक वाम लोकरंजकतावादी है और उसकी आयेन्दे से हूबहू तुलना नहीं हो सकती है। आयेन्दे का शासन भी धुर दक्षिणपन्थ के बरक्स विकल्पहीनता का नतीजा था और बोरिच की जीत भी इसी विकल्पहीनता का नतीजा है। लेकिन बोरिच आयेन्दे का दुहराव नहीं है और न ही हो सकता है। सरकार बनाने के लिए जनता का समर्थन हासिल हो इसलिए जनता से वायदे ज़रूरी हैं। लेकिन आयेन्दे की नियति को प्राप्त न हो इसलिए आरम्भ से ही बोरिच उस वर्ग को यह विश्वास दिलाना चाहता है कि जिस वर्ग की राज्यसत्ता है उसके हितों का पूरा ख़्याल रखा जायेगा।

बोरिच के राजनीतिक उभार को जिन्होंने निकट से देखा है उन्हें ज़्यादा शक नहीं था कि आने वाले समय में बोरिच किस हद तक जनपक्षधर नीतियों को लागू करेगा। लेकिन यह इतनी जल्दी फ़ासीवादी प्रतिद्वन्द्वी से समर्थन की बात करेगा वह किसी के भी गले से नीचे नहीं उतर रहा।

बहरहाल, विश्व का मीडिया बोरिच को कितना ही क़ाबिल या नौजवान विकल्प की तरह पेश करे मज़दूर वर्ग के लिए ऐसे उदाहरण सबक़ होते हैं। बोरिच अपने पूरे चुनाव अभियान में "जनता", "देशवासी" कहकर सम्बोधित किया करता था। समूची जनता और देशवासियों में तो उच्च मध्यवर्ग और पूँजीपति भी आते हैं। ऐसी राजनीति जो स्पष्ट तौर पर अपने आप को मज़दूर राजनीति नहीं बताती वह मज़दूरों को साथ लेने के लिए बस छल-प्रपंच कर रही होती है। चुनावों से पहले बड़े-बड़े वायदे उसी छल-प्रपंच का हिस्सा है। हर प्रकार की लोकरंजकतावादी राजनीति यही काम करती है, चाहे वह वाम लोकरंजकतावाद हो, जैसे यूनान की सिरिज़ा या स्पेन की पोदेमोस पार्टी, या फिर दक्षिणपन्थी लोकरंजकतावाद हो, जैसे कि अरविन्द केजरीवाल की आम आदमी पार्टी। लोकरंजकतावाद की एक ख़ासियत होती है कि वह हर वर्ग से हर प्रकार का वायदा करती है, क्योंकि अन्ततः उसे पूँजीपति वर्ग की सेवा करनी होती है। क्या आप भूल गये कान पर मफ़लरधारी केजरीवाल को? क्या कुछ सपने नहीं दिखाये थे उसने मज़दूर वर्ग को! मसलन, न्यूनतम मज़दूरी को असंगठित क्षेत्र में लागू करवाना, ठेका प्रथा का उन्मूलन करवाना आदि। आज क्या उन वायदों को दो बार लगातार चुने जाने के बाद भी उसने पूरा किया है? सरकार में आने के बाद कुछ मूँगफली के दाने-समान सुधार कार्य होता है और बाक़ी पूरी ख़िदमत पूँजीपति वर्ग और विशेष तौर पर एकाधिकारी पूँजी की होती है। अब तो केजरीवाल भाजपा की 'बी टीम' बनने का काम भी खुले तौर पर कर रहा है। भाजपा अन्धराष्ट्रवाद का राग अलापती है, तो केजरीवाल उसकी प्रतिस्पर्द्धा में दिल्ली के स्कूलों में राष्ट्रवाद का कोर्स डाल देता है; भाजपा काशी विश्वनाथ में मन्दिर बनवाने की बात करती है, तो केजरीवाल उत्तराखण्ड में हिन्दुओं की वैश्विक पवित्र भूमि बनाने का वायदा कर डालता है; मोदी एक मन्दिर में पूजा करके लौट ही रहा होता है कि केजरीवाल दूसरे मन्दिर में पूजा करने पहुँच जाता है!

दक्षिणपन्थी लोकरंजकतावाद की यही ख़ासियत होती है : वह आर्थिक मोर्चे पर लोकलुभावन कार्यक्रम रखता है और राजनीतिक तौर पर सारे मुहावरे और जुमले दक्षिणपन्थी राजनीति से उधार लेता है। बोरिच वाम लोकरंजकतावादी है और इस मायने में केजरीवाल से अलग है। वह आर्थिक मोर्चे पर तो लोकलुभावन कार्यक्रम पेश करता है, लेकिन अपनी राजनीति के सारे मुहावरे और जुमले दक्षिणपन्थियों से उधार नहीं लेता है। ऐसे लोग सत्ता में आने के पहले ज़्यादा "वाम" दिखते हैं, लेकिन सत्ता में आते ही अधिक से अधिक उदारपन्थी नज़र आने लगते हैं। इस "वाम" की ख़ासियत भी यह है कि इसके केन्द्र में मज़दूर वर्ग की राजनीति नहीं होती बल्कि दमित सामाजिक समुदायों की पहचानवादी राजनीति (स्त्री, मूल निवासी, समलैंगिक, जनजातीय), युवाओं को अपील करने वाला लोकरंजकतावाद, टुटपुँजिया वर्गों के छोटे धन्धों को बचाने की राजनीति और कहीं हाशिए पर मज़दूरों के हितों की दबे स्वरों में बात होती है और साथ में कुछ साम्राज्यवाद-विरोध के जुमले। इन सबका घोल-मट्ठा बनाकर "वामपन्थी" राजनीति का शरबत तैयार होता है। लातिनी अमेरिका में तो ख़ास तौर पर इसका प्रभाव रहा है। बोरिच की राजनीति भी मोटे तौर पर इसी श्रेणी में आती है।

पूरे लातिन अमेरिका की सबसे 'मज़बूत' अर्थव्यवस्थाओं में से एक चीले की अर्थव्यवस्था है। लेकिन रोज़गार के सृजन से रिक्त विकास यहाँ की भी ख़ासियत है। यानी ऐसा विकास जिसका लाभ केवल पूँजीपति

(पेज 12 पर जारी)

यूक्रेन में रूस और अमेरिका के बीच साम्राज्यवादी रस्साकशी

सार्थक

एक बार फिर यूक्रेन में रूस और अमेरिका के बीच साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा गर्म होती दिख रही है। यूक्रेन के उत्तरी अटलाण्टिक सन्धि संगठन (नाटो) में जुड़ने की प्रक्रिया तेज़ी पकड़ते देख रूस पूर्वी यूरोप में अपने वर्चस्व को बचाने के मक़सद से यूक्रेन पर एक बार फिर धावा बोलने की धमकियाँ दे रहा है। वहीं दूसरी ओर अमेरिका के नेतृत्व में नाटो देश रूस पर सख़्त से सख़्त प्रतिबन्ध लगाने की तयारी कर रहे हैं। रूस ने यूक्रेन सीमा पर अपने एक लाख सैनिक तैनात कर दिये हैं और अपनी सामरिक शक्ति का प्रदर्शन कर रहा है। इसके जवाब में अमेरिका ने सम्भावित रूसी आक्रमण के ख़िलाफ़ नाटो का एक पूर्वी मोर्चा खोलने की घोषणा की है और इसके तहत नाटो के पूर्वी यूरोपीय देशों में अपने सैनिक भेजने की बात की है। हालाँकि रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन और अमरीकी राष्ट्रपति जो बिडेन ने इस मसले पर बातचीत के विकल्प को अब भी खुला रखा है, मगर बातचीत को आगे बढ़ाने के लिए पुतिन ने अमरीका और नाटो से जो गारण्टी की माँग की है, उस माँग को नाटो ने सिरे से ख़ारिज कर दिया है। पुतिन ने नाटो से यह गारण्टी माँगी है कि यूक्रेन समेत अन्य भूतपूर्व सोवियत देशों को नाटो की सदस्यता न दी जाये, जो नाटो को नामंज़ूर है। इस हालत में रूस और नाटो के बीच बातचीत से यूक्रेन समस्या पर कोई दीर्घकालिक समाधान मिलने की उम्मीद कम ही है। ज़्यादा से ज़्यादा रूस मौजूदा हालात पर मोल भाव करके 2014 के बाद से अपने ऊपर लगे आर्थिक प्रतिबन्धों को तात्कालिक तौर पर हटाने के लिए अमेरिका और नाटो पर दबाव बना सकता है। इसके बावजूद यह कहा जा सकता है कि यूक्रेन पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों और रूसी साम्राज्यवाद के बीच संघर्ष की एक रणभूमि बना रहेगा।

1991 में सोवियत संघ के विघटन के बाद यूक्रेन और रूस के सम्बन्ध कई उतार-चढ़ाव से होते हुए आगे बढ़े। रूस यूक्रेन को अपने प्रभाव क्षेत्र में बनाये रखने की पूरी कोशिश करता आया है, हालाँकि यूक्रेन ने अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा का फ़ायदा उठाते हुए पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों के साथ मोलभाव भी करता रहा है। अन्य भूतपूर्व सोवियत देशों की तरह यूक्रेन भी यूरोपीय संघ और नाटो के क़रीब होता चला गया। भू-राजनीतिक दृष्टि से यूक्रेन रूस के लिए एक बेहद महत्वपूर्ण क्षेत्र है। मध्य और पश्चिमी यूरोप को रूस जो गैस निर्यात करता है उस गैस की पाइपलाइनें यूक्रेन से होते हुए ही जाती हैं। साथ ही अगर यूक्रेन नाटो का सदस्य बन जाता है तो रूस को डर है कि उसके लिए काले सागर के रास्ते भूमध्य सागर तक पहुँचना मुश्किल हो जायेगा। 2014 में यूक्रेन की संसद ने यूक्रेन और यूरोपीय संघ तथा नाटो के बीच राजनीतिक सम्बन्ध और मुक्त व्यापार समझौते को अधिक पुख़्ता करने के लिए एक अधिनियम पारित किया। लेकिन रूस के क़रीबी यूक्रेन के तत्कालीन राष्ट्रपति विक्टर यानुकोविच ने इस अधिनियम पर अपनी मुहर लगाने से इन्कार कर दिया। इस घटना ने यानुकोविच के ख़िलाफ़ जनअसन्तोष को एक बग़ावत की शक्ल देने में विपक्षी ताक़तों को मदद दी और "यूरोमैदान" विरोध प्रदर्शनों ने विक्टर यानुकोविच को राष्ट्रपति पद से उखाड़ फेंका। यह दीगर बात है कि यानुकोविच के विरुद्ध जनअसन्तोष को यूरोमैदान विरोध आन्दोलन में तब्दील करने वाला राजनीतिक विपक्ष स्वयं प्रतिक्रियावादी और दक्षिणपन्थी पूँजीवादी ताक़तों से भरा हुआ है और जो हुआ वह कम-से-कम आंशिक तौर पर पश्चिमी साम्राज्यवाद द्वारा समर्थित और धुर-दक्षिणपन्थी व अर्द्ध-फ़ासीवादी ताक़तों द्वारा आयोजित एक तख़्तापलट ही था। इसके बाद इस तख़्तापलट का और धुर दक्षिणपन्थी ताक़तों का विरोध करने वाली आबादी का विशेष तौर पर पूर्वी यूक्रेन में नयी सत्ता ने बर्बर दमन किया। इसमें अच्छी-ख़ासी आबादी उनकी थी जो कि यूक्रेन में बसे हुए रूसी थे।

1991 में सोवियत संघ के विघटन के बाद और विशेषकर 1997 से 2014 यूक्रेन में रूस के प्रति अनुकूल रवैया रखने वाली विविध राजनीतिक शक्तियों का दबदबा था, जिनमें पार्टी ऑफ़ रीज़न्स प्रमुख थी। लेकिन 2014 क्रीमिया और दोनबास में टकराव के बाद इन शक्तियों का प्रभाव यूक्रेन में तेज़ी से घटा। विक्टर यानुकोविच का सत्ताच्युत होना, आन्तरिक भ्रष्टाचार और आर्थिक कुप्रबन्धन के अलावा, इस घटना का भी नतीजा था। पूर्वी यूरोप में अपने सबसे भरोसेमन्द नेता को पदच्युत होते देख रूस ने अपने साम्राज्यवादी हितों की हिफ़ाज़त में यूक्रेन के क्रीमिया प्रायद्वीप पर आक्रमण कर दिया और उसका अधिग्रहण कर लिया। रूस के लिए यूक्रेन का भूराजनीतिक ही नहीं बल्कि आर्थिक तौर पर भी केन्द्रीय महत्व है। रूस अपने हितों की क्षेत्र में रक्षा करने और अपने साम्राज्यवादी प्रभाव-क्षेत्र की रक्षा करने के लिए प्रतिबद्ध था, तो वहीं अमेरिका की अगुवाई में यूरोपीय संघ और समूचा पश्चिमी साम्राज्यवाद यूक्रेन में चल रही जद्दोजहद का फ़ायदा उठाकर अपने प्रभाव-क्षेत्र को बढ़ाना चाहता था और रूस को पीछे धकेलना चाहता था।

इसके साथ यूक्रेन के पूर्वी हिस्से में स्थित दोनबास प्रान्त में अलगाववादी समूहों को आर्थिक और सैन्य समर्थन दे कर रूस ने यूक्रेन के इस हिस्से में एक गृहयुद्ध को हवा दी जो आज तक लड़ी जा रही है। इस युद्ध में अब तक 14,000 लोगों की मौत हो चुकी है। यूक्रेन के पूर्वी और दक्षिण हिस्से में रूसी मूल के लोगों की बहुसंख्या है। सांस्कृतिक और भाषाई भिन्नताओं के कारण यूक्रेन के इन हिस्सों के लोगों का यूक्रेनी मूल के लोगों के साथ अन्तरविरोध तो था, लेकिन जनता के बीच के इस अन्तरविरोध को एक शत्रुतापूर्ण अन्तर्विरोध बनाने का काम यूक्रेनी और रूसी राज्य ने किया। क्रीमिया पर आक्रमण और दोनबास क्षेत्र में गृहयुद्ध ने यूक्रेन को नाटो और अमेरिका के और क़रीब लाया है। नाटो ने भी पूर्वी यूरोप में अपना शिकंजा मज़बूत बनाने के लिए इस मौक़े का बख़ूबी फ़ायदा उठाया और दोनबास में चल रहे गृहयुद्ध में यूक्रेनी सत्ता को सक्रिय सहयोग दिया।

यह तो तय है कि यूक्रेन में चाहे रूस समर्थित सरकार आये या नाटो व यूरोपीय संघ समर्थित सरकार आये, दोनों ही स्थिति में वहाँ के मज़दूर वर्ग के शोषण और जीवन परिस्थितियों में कोई ख़ास गुणात्मक बदलाव नहीं आने वाला है। 2004-2005 के नारंगी क्रान्ति ("ऑरेंज रिवोल्यूशन") में देशव्यापी विशाल विरोध प्रदर्शनों, सविनय अवज्ञा और आम हड़तालों ने सुप्रीम कोर्ट को विक्टर यानुकोविच की चुनावी जीत के नतीजे पलटने में मजबूर कर दिया। यानुकोविच के विरोध में जो राजनीतिक ताक़तें थीं, वे पश्चिमी साम्राज्यवाद से क़रीबी रखती थीं और उनमें धुर कम्युनिस्ट-विरोधी ताक़तों का भी बोलबाला था। यूक्रेनी जनता और ख़ास तौर पर वहाँ के नौजवानों का बढ़ती महँगाई, बेरोज़गारी और भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ जो ग़ुस्सा था वह 2004 में नारंगी क्रान्ति के रूप में सड़कों पर फूट पड़ा था, जिसका पश्चिमी साम्राज्यवाद ने अपनी तरह से इस्तेमाल किया था। पुनर्निर्वाचन में यानुकोवीच को शर्मनाक हार का मुँह देखना पड़ा और यूरोपीय संघ और नाटो के समर्थक विक्टर युष्चेंको यूक्रेन के नए राष्ट्रपति बने। लेकिन पाँच सालों में यह साफ़ हो गया कि यह नयी सरकार भी जनता को एक बेहतर ज़िन्दगी देने में और भ्रष्टाचार ख़त्म करने में पुरानी सरकार जितनी ही नाक़ाबिल है। इसका नतीजा यह हुआ कि 2010 में यानुकोविच फिर राष्ट्रपति चुन लिये गये। यूरोमैदान प्रदर्शनों के बाद 2014 में यानुकोविच गद्दी छोड़ कर रूस भाग खड़ा हुआ। उसके भागने के बाद नाटो व यूरोपीय संघ समर्थित जो नयी सरकार सत्ता पर क़ाबिज़ हुई, उसकी आर्थिक-सामाजिक नीतियों में भी कोई ज़्यादा फ़र्क़ नहीं है।

अगर प्रति व्यक्ति आय, मानव विकास सूचकांक आदि जैसे विकास और ख़ुशहाली के बुर्जुआ मानकों पर ही एक निगाह डालें तो हम पाते हैं की यूक्रेन इन मानकों में भी बाक़ी यूरोप से काफ़ी पीछे है। इस पूँजीवादी व्यवस्था की चौहद्दियों के अन्दर जो भी सरकार सत्ता पर क़ाबिज़ होगी वह देशी और विदेशी पूँजी की ही नुमाइन्दगी करेगी, इस या उस साम्राज्यवादी धड़े के हितों को ही साधेगी। ऐसे में यूक्रेन के मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश जनता, चाहे वह किसी भी राष्ट्र की क्यों न हों उन्हें यूक्रेन में चल रही अन्तर-साम्राज्यवादी रस्साकशी और युद्ध उन्माद का पुरज़ोर विरोध करना चाहिए। अपनी वर्ग एकजुटता का प्रदर्शन करते हुए देशी-विदेशी पूँजी के ख़िलाफ़ एक क्रान्तिकारी स्वतंत्र पक्ष के निर्माण के लिए कमर कस लेनी चाहिए। यूक्रेन फ़िलहाल साम्राज्यवादी रूस और साम्राज्यवादी अमेरिका व यूरोपीय संघ के बीच प्रतिस्पर्द्धा की ज़मीन बना हुआ है। रूसी साम्राज्यवाद की आक्रामकता से घबराकर यूक्रेनी शासक वर्ग कभी पश्चिमी साम्राज्यवादी शक्तियों की ओर दोलन करता है, तो रूसी आर्थिक व राजनीतिक प्रभाव और साथ ही यूक्रेन के भीतर रूसी आबादी और रूस में विचारणीय यूक्रेनी आबादी के कारण जो ऐतिहासिक तार जुड़े हुए हैं, उनके कारण वह कभी रूस की ओर दोलन करता है। लेकिन इन दोनों ही सूरत में यूक्रेन में आम मेहनतकश जनता के लिए उनकी नीतियों में कोई अन्तर नहीं आता है। क्रीमिया व दोनबास में हर साम्राज्यवादी टकराव की कीमत यूक्रेन और साथ ही रूस की आम जनता ही चुकाती है। साम्राज्यवादी लुटेरे अपने देश के बड़े पूँजीपति वर्ग के आर्थिक हितों की हिफ़ाज़त की ख़ातिर आम मेहनतकश जनता के जीवन की बलि देने में कभी हिचकिचाते नहीं हैं और यूक्रेन में दो साम्राज्यवादी धड़ों के बीच जो जद्दोजहद चल रही है, उसके केन्द्र में यही अन्तरविरोध है। इसका जवाब यूक्रेन में मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी संगठन के ज़रिए ही दिया जा सकता है। केवल मज़दूर वर्ग के इन्क़लाबी संगठन और एकजुटता के ज़रिए ही देशी पूंजीपति वर्ग के हाथों से सत्ता छीनी जा सकती है और यूक्रेन को साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा का अखाड़ा बनने से रोका जा सकता है। लेकिन फ़िलहाल ऐसी कोई राजनीतिक शक्ति यूक्रेन में मौजूद नहीं है, जो इस कार्यभार को पूरा कर सके।

चीले में गाब्रिएल बोरिच की जीत के वहाँ के मज़दूर वर्ग के लिए निहितार्थ

(पेज 11 से आगे)

वर्ग को पहुँचता है। जो रोज़गार मिलते भी हैं, उनमें मज़दूरों को ग़ुलामों के माफ़िक़ खटाया जाता है और छँटनी की तलवार हमेशा सिर पर लटकती रहती है। बोरिच की जीत पर पागल होकर झूमने वाली संशोधनवादी पार्टियों और उदारवादी बुद्धिजीवियों में हमेशा की तरह एक नयी उम्मीद जग गयी है कि शायद इस बार कोई कल्याणकारी और समाजवादी राज्य स्थापित कर ले जायेगा और संसद के रास्ते क्रान्ति का उनका सपना पूरा हो जायेगा। लेकिन पूँजीवाद के मातहत किसी भी स्थायी कल्याणकारी राज्य की सोच रखना न केवल मूर्खता है बल्कि मज़दूर वर्ग की पीठ में छुरा भोंकने के समान है। केवल आर्थिक तेज़ी के दौर में कुछ पूँजीवादी देशों में विशेष परिस्थितियों में कुछ समय के लिए कल्याणकारी नीतियाँ लागू हो सकती हैं और उसमें भी मज़दूर वर्ग के आन्दोलन के दबाव और कम्युनिज़्म के भय की एक भूमिका होती है। पूँजीवाद की आन्तरिक गति इस बात को सुनिश्चित करती है कि किसी भी प्रकार कल्याणवाद केवल अल्पजीवी ही हो सकता है और संकट के दौर में तो इसकी सम्भावना भी नगण्य होती है। बोरिच के साथ दुनियाभर के संशोधनवादियों, सुधारवादियों आदि में जो नये सपने जगे हैं, वे जल्द ही ध्वस्त हो जायेंगे। साथ ही, किसी क्रान्तिकारी विकल्प के अभाव में धुर दक्षिणपन्थ के बरक्स एकमात्र विकल्प प्रतीत होते हुए बोरिच के प्रति चीले की मेहनतकश जनता की उम्मीदें भी अन्ततः ढह जायेंगी। क्रान्तिकारी सामाजिक परिवर्तन कभी चुनावों के ज़रिए नहीं होते और कोई भी शोषक वर्ग अपनी सत्ता चुनावों के ज़रिए शोषित वर्गों के हाथों में नहीं सौंपता है।

बोरिच एक वाम लोकरंजकतावादी है और नौजवान होने के बावजूद पूँजीवादी राजनीति के दाँवपेच को समझता है। बोरिच को इस बात की ख़बर है कि 2019 के हिंसक जनप्रतिरोध के बाद 50 अरब डॉलर से अधिक धन इजारेदार पूँजीपति वर्ग ने देश से बाहर निकाल लिया था। उसे स्पष्ट है कि इजारेदार पूँजीपति वर्ग से सहयोग-सहकार करके ही उसकी सरकार की नैया पार लग सकती है और उसकी तैयारी में वह लग चुका है। उसने इजारेदार पूँजीपति वर्ग का समर्थन हासिल करने के लिए उसके राजनीतिक प्रतिनिधि यानी खोसे आन्तोनियो कास्त के साथ मिलकर काम करने की अपनी मंशा तो स्पष्ट कर ही दी है। जल्दी ही इसकी नीतियाँ भी इस वर्ग की ख़िदमत करती नज़र आयेंगी।

मज़दूर वर्ग की पार्टी का प्रचार क्रान्तिकारी प्रचार होता है

सनी

मज़दूर वर्ग की पार्टी का प्रचार क्रान्तिकारी होता है। यह प्रचार मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश जनता से ही निर्धारित होता है। यानी क्रान्तिकारी प्रचार के लिए सही विचार, सही नारे, और सही नीतियाँ आम मेहनतकश जनता के सही विचारों को संकलित कर, उसमें से सही विचारों को छाँटकर, सही विचारों के तत्वों को छाँटकर और उनका सामान्यीकरण करके ही सूत्रबद्ध किये जा सकते हैं। लेनिन बताते हैं कि "मज़दूरों के आम हितों और आकांक्षाओं के आधार पर, ख़ासकर उनके आम संघर्षों के आधार पर, कम्युनिस्ट प्रचार और आन्दोलन की कार्रवाई को इस प्रकार चलाना चाहिए कि वह मज़दूरों के अन्दर जड़ें जमा ले।" यही बात आम मेहनतकश जनता के बीच किये जाने वाले प्रचार के लिए भी सही है। इसका मतलब यही होता है कि मज़दूर वर्ग की पार्टी का प्रचार क्रान्तिकारी जनदिशा के उसूल से निर्देशित होता है। पार्टी को जनता के बीच बिखरे सही विचारों को समेटकर, उनमें से बुनियादी तत्वों को छाँटकर, उनका सामान्यीकरण कर एक सही राजनीतिक लाइन को सूत्रबद्ध करना चाहिए और उसे वापस जनता के बीच ले जाना चाहिए। केवल तभी जब ये विचार नारों और प्रचार सामग्री के रूप में जब जनता तक पहुँचते है तो जनता उन्हें अपनाती है। जब जनता मज़दूर वर्ग की पार्टी के सही विचारों को आत्मसात कर लेती है तो "ये विचार एक ऐसी भौतिक शक्ति में बदल जाते हैं जो समाज को और दुनिया को बदल डालते हैं।"(माओ)

जनता की चेतना को उन्नत करने के साथ-साथ आन्दोलनों में जनता को नेतृत्व देने के लिए मज़दूर पार्टी को अपने प्रचार को बेहद गम्भीरता से तैयार करना चाहिए। ख़ास तौर पर आज के दौर में और भारत सरीखे देशों में जहाँ मेहनतकश जनता का विशाल बहुमत क्रान्तिकारी चेतना तक नहीं पहुँचा है, हमें कम्युनिस्ट प्रचारों के नित नये रूपों की तलाश करनी चाहिए। लेनिन इसी बाबत कहते हैं कि "उन पूँजीवादी देशों में जहाँ सर्वहारा वर्ग का विशाल बहुमत क्रान्तिकारी चेतना के स्तर पर अभी नहीं पहुँच पाया है, कम्युनिस्ट आन्दोलनकारियों को इन पिछड़े हुए मज़दूरों की चेतना को ध्यान में रखते हुए और क्रान्तिकारी क़तारों में इनका प्रवेश आसान बनाने के लिए लगातार कम्युनिस्ट प्रचार के नये रूपों की खोज करते रहना चाहिए। अपने नारों के ज़रिए कम्युनिस्ट प्रचार को उन प्रस्फुटित होती हुई, अचेतन, अपूर्ण, ढुलमुल और अर्द्धपूँजीवादी क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों को उभारना और सामने लाना चाहिए जो मज़दूरों के दिमाग़ों में पूँजीवादी परम्पराओं और अवधारणओं के ऊपर हावी होने के लिए संघर्ष कर रही होती हैं। साथ ही, कम्युनिस्ट प्रचार को सर्वहारा जनसमुदाय की सीमित एवं अस्पष्ट माँगों और आकांक्षाओं तक ही सीमित रहकर सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। इन माँगों और आकांक्षाओं में क्रान्तिकारी भ्रूण मौजूद रहते हैं और ये सर्वहारा वर्ग को कम्युनिस्ट प्रचार के प्रभाव के अन्तर्गत लाने का साधन होती हैं।।"

पहली बात यह कि जनता की माँगों और आकांक्षाओं की जानकारी तभी हासिल की जा सकती है जब कि पार्टी के कार्यकर्ताओं की जनता के बीच पैठ हो और वे जनता के जीवन और उसकी तकलीफ़ों से वाक़िफ़ हो। दूसरी यह कि जनता के अस्पष्ट और अधूरे सही विचारों और वर्ग संघर्ष के व्यवहार के अनुभवों को समेटकर मज़दूर पार्टी मार्क्सवादी विज्ञान तथा दर्शन की रोशनी में उसके सारभूत तत्वों को छाँटकर तथा उसका सामान्यीकरण कर नारे तथा कम्युनिस्ट प्रचार सामग्री तैयार करती है। पार्टी के नारे तथा प्रचार सामग्री मार्क्सवादी विज्ञान और दर्शन की रोशनी में और क्रान्तिकारी जनदिशा के अमल के ज़रिए ही गढ़े जा सकते है। "जनसमुदाय से जनसमुदाय तक" ले जाने का रास्ता यही है। माओ समझाते हैं कि "जनसमुदाय के विचारों को (बिखरे हुए और अव्यवस्थित विचारों को) एकत्र करो और उनका निचोड़ निकालो (अध्ययन के ज़रिए उन्हें केन्द्रित और सुव्यवस्थित विचारों में बदल डालो), इसके बाद जनसमुदाय के बीच जाओ, इन विचारों का प्रचार करो और जन समुदाय को समझाओ जिससे वह उन्हें अपने विचारों के रूप में अपना ले, उन पर दृढ़ता से क़ायम रहे और उन्हें कार्य रूप में परिणित करे, तथा इस प्रकार की कार्रवाई के दौरान इन विचारों के अचूकपन की परख कर लो। इसके बाद फिर एक बार जनसमुदाय के विचारों को एकत्र करके उनका निचोड़ निकालो और फिर एक बार जन समुदाय के बीच जाओ ताकि उन विचारों पर अविचल रहा जा सके और उन्हें कार्यान्वित किया जा सके। इस प्रकार की प्रक्रिया को एक अन्तहीन चक्र के रूप में बार-बार दोहराते रहने से वे विचार हर बार पहले से ज़्यादा सही, पहले से ज़्यादा सजीव और पहले से ज़्यादा समृद्ध बनते जायेंगे। यही है मार्क्सवाद का ज्ञान-सिद्धान्त।"

जनान्दोलनों, मज़दूरों के आर्थिक और राजनीतिक आन्दोलनों में मज़दूर पार्टी की प्रचार सामग्री तथा ठोस नारे जीवित शक्ति बन जाते हैं। पर यहाँ पहुँचने पर यह प्रक्रिया थमती नहीं है बल्कि पुनः मज़दूर पार्टी को जनता के बीच उनके विचारों को एकत्रित करती है, उनके सारभूत तत्वों को अलग करती है और सामान्यीकरण पुनः प्रचार सामग्री तथा ठोस नारों को जनता के समक्ष रखती है। यह प्रक्रिया अनन्त बार दोहरायी जाती है।

माओ के 'घिसे-पिटे पार्टी लेखन का विरोध करो' लेख में कम्युनिस्ट प्रचार कैसा हो इसे लेनिन के हवाले से स्पष्ट किया गया है। लेनिन ने 1894 में बाबुश्किन की मदद से सेण्ट पीटर्सबर्ग के हड़ताली मज़दूरों के नाम पर्चा लिखा। लेनिन ठोस जाँच-पड़ताल और अध्ययन के आधार पर ही प्रचार सामग्री तैयार करते थे। माओ दिमित्रोव व लेनिन के हवाले से बताते हैं कि प्रचार की शैली स्पष्ट, सरल और जनता की भाषा में होनी चाहिए। वे बोल्शेविक पार्टी के इतिहास पुस्तिका के निम्न हिस्से को उद्धृत करते हैं :

"लेनिन के मार्गदर्शन में 'मज़दूर वर्ग के मुक्ति संघर्ष की सेण्ट पीटर्सबर्ग समिति' ने सबसे पहले रूस में समाजवाद को मज़दूर आन्दोलन के साथ मिलाने की शुरुआत की। किसी कारख़ाने में हड़ताल हो जाने पर यह 'संघर्ष समिति', जिसको अपने दलों के सदस्यों के ज़रिए कारख़ानों की हालत के बारे में अच्छी तरह से जानकारी हासिल होती रहती थी, फौरन पर्चे लेकर और समाजवादी ऐलानों के ज़रिए मज़दूरों का समर्थन करती थी। इन पर्चों में उद्योगपतियों द्वारा मज़दूरों के उत्पीड़न का पर्दाफ़ाश किया जाता था, मज़दूरों को यह बताया जाता था कि उन्हें अपने हितों के लिए किस प्रकार संघर्ष करना चाहिए, और उनमें मज़दूरों की माँगों को पेश किया जाता था। ये पर्चे पूँजीवाद के नासूरों के बारे में, मज़दूरों की ग़रीबी के बारे में, 12 से 14 घण्टे तक कमरतोड़ सख़्त मेहनत वाले उनके श्रमदिन के बारे में और उनके अधिकारों के पूर्ण अभाव के बारे में सच्चाई को स्पष्ट रूप से पेश करते थे। उनमें उचित राजनीतिक माँगों को भी पेश किया जाता था।"

महत्वपूर्ण बात है कि मज़दूर पार्टी का प्रचार क्रान्तिकारी होने का अर्थ ही यह है कि यह प्रचार केवल मज़दूरों की आर्थिक माँगों तक सीमित नहीं रह सकता है। आर्थिक माँगों से यहाँ आशय केवल व्यावसायिक या ट्रेड यूनियन माँगों से है। इस मसले पर रूस में लेनिन की अर्थवादियों से बहस हुई थी। अर्थवादियों का कहना था कि आर्थिक माँगों पर संघर्ष के ज़रिए ही मेहनतकश जनता को राजनीतिक संघर्ष में खींचा जा सकता है और यह कि आर्थिक माँगों पर संघर्ष ही आगे चलकर ख़ुद-ब-ख़ुद राजनीतिक संघर्ष में बदल जाता है। लेनिन ने इसे प्रतिक्रियावादी और हानिकारक विचार बताया। लेनिन ने बताया कि यह मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों का पूर्वाग्रह है कि मज़दूर केवल अपने वेतन-भत्ते की माँगों पर ही सोच और लड़ सकता है और उसकी शुद्धतः राजनीतिक मसलों में कोई दिलचस्पी नहीं होती है। लेनिन ने इस बहस के ज़रिए ट्रेडयूनियनवादी प्रचार और क्रान्तिकारी प्रचार के बीच अन्तर भी स्पष्ट किया। मज़दूर वर्ग की पार्टी के प्रचार का सार क्या हो वह इस बहस में लेनिन की अवस्थितियों के ज़रिए स्पष्ट हो जाता है।

1861 में रूस में भूदास प्रथा ख़त्म हुई थी और प्रशियन पथ के ज़रिए क्रमिक पूँजीवादी विकास हुआ। फ़ैक्टरी कारख़ानों में 1880 से तेज़ी आयी। नये-नये विकसित हुए उद्योगों में मज़दूरों की ज़िन्दगी नर्क समान थी। इस नर्क सरीखी ज़िन्दगी के ख़िलाफ़ ही रूस में 1890 से फ़ैक्टरी कारख़ानों में हड़तालों का दौर शुरू हुआ। हड़तालों की तीव्रता नई सहस्राब्दी में और बढ़ गयी और उसमें क्रान्तिकारियों का हस्तक्षेप भी बढ़ता गया। मज़दूर वर्ग का आन्दोलन 1905 की पहली रूसी जनवादी क्रान्ति की एक प्रमुख शक्ति बना। मज़दूर न सिर्फ़ अपनी आर्थिक माँगों के लिए संघर्ष कर रहे थे, बल्कि वे ज़ारकालीन रूस में सीधे राजनीतिक जनवाद की माँग के लिए भी लड़ रहे थे। हड़ताल आन्दोलन में कम्युनिस्टों ने बढ़-चढ़कर नेतृत्व दिया। इसमें लेनिन की अहम भूमिका थी। लेनिन ने 1894-1895 में सेण्ट पीटर्सबर्ग के मज़दूरों के बीच हड़ताल को संगठित किया और साथ ही इन आन्दोलनों में सघन क्रान्तिकारी प्रचार भी किया। मज़दूर कारख़ानों की नर्क सरीखी स्थितियों के भण्डाफोड़ को लेकर मज़दूर बड़ी मात्रा में छापना चाहते थे। लेनिन बताते हैं कि ऐसे " 'पर्चों' में ज़्यादातर कारख़ानों की हालत का भण्डाफोड़ रहता था, और शीघ्र ही मज़दूरों में इस तरह के भण्डाफोड़ की धुन पैदा हो गयी। जैसे ही मज़दूरों को यह महसूस हुआ कि कम्युनिस्ट समूह उन्हें एक नये तरह के परचे देना चाहते हैं और दे सकते हैं, जिनमें ग़रीबी से ग्रस्त उनके जीवन के बारे में उनकी कमरतोड़ मेहनत और अधिकारों के अभाव के विषय में पूरा सत्य लिखा रहेगा, वैसे ही कारख़ानों और फ़ैक्टरियों से पत्रों का ताँता बंध गया। इस 'भण्डाफोड़ करनेवाले साहित्य' से न सिर्फ़ उस ख़ास कारख़ाने में, जिसकी हालत का उसमें भण्डाफोड़ किया गया था, बल्कि जहाँ कहीं भी उस भण्डाफोड़ की ख़बर पहुँचती थी, उन तमाम कारख़ानों में भी सनसनी पैदा हो जाती थी। चूँकि अलग-अलग उद्योगों तथा अलग-अलग पेशों के मज़दूरों की आवश्यकताएँ और विपत्तियाँ मोटे तौर पर एक समान ही हैं, इसलिए 'मज़दूरों की ज़िन्दगी के बारे में सचाई' सभी मज़दूरों को आन्दोलित करती थी।" (लेनिन, *क्या करें*)

परन्तु कुल मिलाकर इन संघर्षों में मज़दूर अपने श्रम-शक्ति रूपी माल को ज़्यादा बेहतर दामों में बेचने को लेकर "ख़रीदार से लड़ना-झगड़ना सीखते थे।" फ़ैक्टरी की हालात का भण्डाफोड़ करने से आगे बढ़कर इसे सर्वांगीण राजनीतिक भण्डाफोड़ तक पहुँचाना लेनिन के अनुसार मज़दूर पार्टी का अहम कार्यभार था। लेनिन स्पष्ट करते हैं कि मज़दूर वर्ग की पार्टी केवल श्रमशक्ति की बिक्री के बेहतर दाम हासिल करने के लिए नहीं, बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था को मिटाने के लिए भी मज़दूर वर्ग के संघर्ष का नेतृत्व करती है "जो सम्पत्तिहीन लोगों को धनिकों के हाथों बिकने के लिए मजबूर करती है।" लेनिन स्पष्ट करते हैं मज़दूर वर्ग की पार्टी मज़दूरों की केवल मालिकों के सम्बन्ध में ही हिरावल नहीं होती बल्कि असल में "समाज के हर वर्ग के साथ तथा एक संगठित राजनीतिक शक्ति के रूप में राज्यसत्ता के साथ उसके सम्बन्ध के मामले में" (लेनिन) हिरावल होती है। मज़दूर वर्ग एक राजनीतिक वर्ग के तौर पर पार्टी के ज़रिए ही संगठित हो सकता है। राजनीतिक वर्ग के रूप में संगठित होने का क्या अर्थ है? इसका अर्थ है मज़दूर वर्ग के उन्नत तत्वों को एक राजनीतिक परियोजना से लैस करना; दूसरे शब्दों में, राजनीतिक वर्ग वह वर्ग होता है, जिसका लक्ष्य पूँजीवादी राज्यसत्ता का ध्वंस और अपनी राज्यसत्ता की स्थापना करना होता है। पूँजीपति वर्ग के लिए भी यह भूमिका उसका हिरावल निभाता है और सर्वहारा वर्ग के लिए भी यह भूमिका उसके हिरावल तत्व ही निभाते हैं। इन हिरावल तत्वों को मार्क्सवादी दर्शन व विज्ञान से लैस और क्रान्तिकारी जनदिशा लागू करने वाली पार्टी के नेतृत्व में ही गोलबन्द और संगठित किया जा सकता है। उसके बिना मज़दूर वर्ग महज़ जनसमुदायों का अंग बना रहता है, उन्हें नेतृत्व देने वाली हिरावल शक्ति यानी एक राजनीतिक वर्ग, सर्वहारा वर्ग, में तब्दील नहीं हो पाता।

मज़दूर पार्टी के प्रचार की राजनीतिक शिक्षा कैसी हो, इसका ठोस जवाब देते हुए लेनिन कहते हैं कि :

कम्युनिस्टों का "आदर्श ट्रेड यूनियन का सचिव नहीं, बल्कि एक ऐसा जन नायक होना चाहिए, जिसमें अत्याचार और उत्पीड़न के प्रत्येक उदाहरण से वह चाहे किसी भी स्थान पर हुआ हो और उसका चाहे किसी भी वर्ग या स्तर से सम्बन्ध हो, विचलित हो उठने की क्षमता हो, उसमें इन तमाम उदाहरणों का सामान्यीकरण करके पुलिस की हिंसा तथा पूँजीवादी शोषण का एक अविभाज्य चित्र बनाने की क्षमता होनी चाहिए; उसमें प्रत्येक घटना का, चाहे वह कितनी ही छोटी क्यों न हो, लाभ उठाकर अपने समाजवादी विश्वासों तथा अपनी जनवादी माँगों को सभी लोगों को समझा सकने और सभी लोगों को सर्वहारा के मुक्ति संग्राम का विश्व-ऐतिहासिक महत्व समझा सकने की क्षमता होनी चाहिए।" मज़दूर वर्ग की पार्टी को मज़दूर वर्ग को समूची आबादी के जीवन तथा व्यवहार का भौतिकवादी मूल्यांकन करना सिखाना चाहिए। लेनिन के ही अनुसार "मज़दूर वर्ग की चेतना उस वक्त तक सच्ची राजनीतिक चेतना नहीं बन सकती, जब तक कि मज़दूरों को अत्याचार, उत्पीड़न, हिंसा और अनाचार के सभी मामलों का जवाब देना, चाहे उनका सम्बन्ध किसी भी वर्ग से क्यों न हो, नहीं

(पेज 15 पर जारी)

नगालैण्ड में सेना के हाथों मज़दूरों का क़त्लेआम

आफ़्स्पा राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष को रौंदने का हथियार है

लता

नगालैण्ट की कवयित्री केदित्सू लिखती हैं "दूर-दूर तक कोई रसोई नहीं थी (भरी हुई भाप के बाहर निकलने के लिए) तो मैंने काग़ज़ का एक टुकड़ा उठाया और उस पर खाने की विधि लिख दी। सूची में "ज़िन्दगी" ("किसी भी आकार की" या "पूरी") सबसे ज़रूरी सामग्री, न होने पर इसकी जगह पर हम "कोयले के टुकड़े", "दो मिनट का मौन" या "5 लाख नक़द" ले सकते हैं। इन्हें आफ़्स्पा के लोहे के बर्तन में धीमी आँच पर पकायें और बेहद आहिस्ते-आहिस्ते चलायें जब तक कि भूला दिये जाने तक यादें सूख न जायें।

यह है आफ़्स्पा के साये में उत्तर पूर्व की ज़िन्दगी। 1958 से नगालैण्ड और पूरे उत्तर-पूर्व में ज़िन्दगी संगीनों और बूटों के तले बेहद बेरहमी से रौन्दी जा रही है जिसकी एक निराश अभिव्यक्ति केदित्सू के शब्दों में महसूस होती है। 4 दिसम्बर को नगालैण्ट के मोन ज़िले के ओटिंग गाँव के आठ लोगों पर सेना ने बिना किसी चेतावनी के गोलियों से हमला कर दिया। मरने वाले खादान में काम करने वाले मज़दूर थे जो काम के बाद शनिवार की शाम सवारी ट्रक में घर लौट रहे थे। उनके घरों पर बच्चे, पत्नी और माँ-बाप इन्तज़ार कर रहे होंगे। लेकिन बिना किसी चेतावनी, पूछ-ताछ या जानने का प्रयास किये सेना ने गोली-बन्दूक़ों से हमला कर दिया। ऐसे किसी भी हमले की सूचना से बेख़बर मज़दूरों पर गोलियों की बौछार होने लगी और चन्द मिनटों में लाशों का ढेर लग गया। आठ में से छ: मज़दूर वहीं मारे गये और दो गम्भीर रूप से घायल हुए। सैनिकों ने घायल मज़दूरों को भी मृत समझकर मृत मज़दूरों की लाशों के साथ वहीं सड़कों पर फेंक दिया।

सेना के इस नरसंहार के बाद मोन ज़िले में लोगों का आक्रोश सड़कों पर फूट पड़ा। सेना ने फिर से बर्बरता दिखाते हुए आठ लोगों को मार डाला। दो दिनों के अन्तराल पर मोन ज़िले के निवासियों ने अपने चौदह लोगों को दफ़न किया जिसमें से सभी नौजवान थे। इन नौजवानों ने अभी चालीस की उम्र भी पार नहीं की थी। इनके घरों में छोटे बच्चे, बूढ़े माँ-बाप हैं और पारिवारिक ज़िम्मेदारियाँ होंगी जिन्हें पूरा करने के लिए ये कोयला खदान में अपना ख़ून-पसीना बहाते थे। पूरे नगालैण्ड और उत्तर-पूर्व में शोक और आक्रोश की लहर फैल गयी। वैसे देखा जाये तो उत्तर-पूर्व में ऐसी घटनाएँ अक्सर होती रहती हैं। बस फ़र्क़ इतना होता है कि जब घटना बड़ी होती है तो सुर्ख़ियाँ बनती हैं नहीं तो आफ़्स्पा जैसे काले क़ानून की आड़ में हत्या, बलात्कार, हिरासत में मौत, हिरासत से ग़ायब होना, फ़ेक एनकाउण्टर और सेना की गाड़ियों में लोगों को कवच की तरह इस्तेमाल करना आम बात है। अभी हाल ही में असम राइफ़ल के एक मेजर ने एक दिहाड़ी मज़दूर को गोली मार दी। चार बच्चों वाले इस मज़दूर को बिना किसी वारण्ट गिरफ़्तार किया गया था। आफ़्स्पा में किसी को भी गिरफ़्तार करने के लिए वारण्ट लेने की ज़रूरत नहीं होती है। मानवाधिकार हनन के लाखों मामले हैं, लेकिन सेना को कोई कुछ नहीं कर सकता।

वैसे तो फ़ासीवादी मोदी सरकार आम जनता के नरसंहार पर कभी कुछ बोलती नहीं है लेकिन मणिपुर में आगामी चुनावों को देखते हुए उन्हें बोलना पड़ा। लेकिन फ़ासीवादी जब मजबूर भी होते हैं तब भी झूठ ही उगलते हैं। अमित शाह ने सफ़ाई देते हुए सफ़ेद झूठ बोला कि सेना ने ट्रक रोकने की कोशिश की थी लेकिन ट्रक ने भागने का प्रयास किया तब सेना को मजबूरी में हमला करना पड़ा। यह बात सरासर ग़लत है क्योंकि ट्रक में सवार आठ लोगों में छ: तो वहीं मारे गये लेकिन दो गम्भीर रूप से घायल थे। दो घायलों में से 23 साल के शेयवांग कोन्यक ने बताया कि उन्हें या उनकी ट्रका को कोई इशारा नहीं किया गया या चेतावनी नहीं दी गयी। सेना ने सीधे गोली चलानी शुरू कर दी और ट्रक के मज़दूरों को दो-तीन मिनट तक समझ ही नहीं आया कि हो क्या रहा है। शेयवांग कोन्यक का कहना है कि जब उन्हें कुछ समझ आता तब तक चारो ओर उसके साथियों की लाशें बिछी थी।

"उपद्रवग्रस्त" या "अशान्त" क्षेत्र के नाम पर सरकारें आफ़्स्पा लगाकर उस क्षेत्र में सेना को किसी भी तरह के कुकर्म को हरी झण्डी देती हैं। लम्बे समय से आफ़्स्पा पर सवाल उठ रहे हैं। 2000 में ऐसी ही एक घटना के बाद जिसे मलोम नरसंहार कहा जाता है सेना ने 10 लोगों को मार डाला था। मलोम नरसंहार का प्रतिरोध करते हुए और आफ़्स्पा को समाप्त करने के लिए इरोम शर्मिला ने भूख हड़ताल की शुरुआत की। 16 साल भूख हड़ताल के बाद भी इस काले क़ानून पर कोई असर नहीं हुआ और आज भी यह जस का तस ज़िन्दगियों को रौंदता बना हुआ है। सेना के अधिकारी चाहे जितने भी जघन्यतम अपराध किये हों आफ़्स्पा की वजह से उनपर कोई कार्रवाई नहीं होती है। एक जनहित याचिका दायर की गयी थी जिसके अनुसार 2000 से 2012 तक के बीच क़ानून को पूरी तरह ताक पर रखकर 1,528 हत्याएँ की गयी थीं। इनमें से ज़्यादातर हत्याएँ हिरासत में प्रताड़ना के दौरान हुई। बेहद प्रतिरोध और आलोचना के बाद उच्च न्यायलय ने एक समिति गठित की जिसका काम था इनमें से कुछ मामलों की जाँच। जाँच में यह साफ़ तौर पर निकलकर आया कि इनमें से किसी भी व्यक्ति का कोई आपराधिक इतिहास नहीं था। कहने का मतलब है वे आम मेहनतकश आबादी थी जिन्हें दिन की रोशनी में बिना किसी अपराध मौत के घाट उतार दिया गया। उच्च न्यायालय ने इसके बाद इन मामालों की जाँच को आगे बढ़ाने के लिए एसआईटी (विशेष जाँच टीम) का गठन किया। आज तक इस टीम ने अपराध करने वाले एक भी सेना के अधिकारी को दोषी क़रार नहीं दिया है। जनान्दोलनों को कुचलने के लिए बनाये गये इस काले क़ानून को सभी सरकारें "राष्ट्रीय सुरक्षा" के नाम पर इस्तेमाल करती आयी हैं तो इस क़ानून को लागू करने वाले अधिकारियों को खुली छूट देना लाज़िमी है।

आफ़्स्पा के प्रावधानों की बात करें तो इसके तहत सेना क़ानून व्यवस्था बनाये रखने के नाम पर किसी पर भी गोली चला सकती है। बिना किसी वारण्ट के गिरफ़्तार कर सकती है। किसी भी व्यक्ति या वाहन को रोक कर जाँच पड़ताल कर सकती है। पाँच से अधिक लोगों के इकट्ठा नहीं हो सकते है। आफ़्स्पा में सेना के छोटे अधिकारियों को भी विशेष अधिकार और सुरक्षा हासिल होती है जिसका नतीजा हम पढ़ चुके हैं, सेना के अधिकारी दण्ड न मिलने की तसल्ली के साथ जघन्य अपराध करते हैं, उदाहरण के लिए 1991 में कश्मीर के दो गाँव कोनान-पोशपोरा में महिलाओं का सेना पूरी रात बलात्कार करती रही। इस आपराधिक कर्म पर तमाम तथ्य और गवाह होने के बावजूद आज तक उन सैनिकों पर कोई कार्रवाई नहीं हुई है। कश्मीर में 1990 से आफ़्स्पा लागू है और उत्तर-पूर्व में 1958 से। यह क़ानून 1985 में नगालैण्ड के आन्दोलन को कुचलने के लिए ही पहली बार बनाया गया था। नगालैण्ड आन्दोलन पर हम बाद में चर्चा करेंगे पहले आफ़्स्पा की कुछ और बर्बर घटनाओं के बारे में बात कर लेते हैं। और यह इसलिए क्योंकि पूँजीवादी राज्यसत्ता अपने हितों की रक्षा के लिए ऐसे कई काले क़ानून अपने तरकश में रखे हैं जैसे यूएपीए, पोटा, मकोका आदि। जीने का अधिकार तक छीनने वाले ऐसे ख़तरनाक, घोर ग़ैर-जनवादी क़ानून संविधानसम्मत हैं।

आफ़्स्पा लगे इलाक़ों से सेना या सैन्य अधिकारियों से सम्बन्धी कोई जानकारी हासिल नहीं की जा सकती। वहीं इनके लागू होने के बाद आम जनता तक उन इलाक़ों की सारी ख़बरें ग़ायब कर दी जाती हैं या इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि कोई जनाक्रोश न पैदा हो। पूरा उत्तर-पूर्व लम्बे समय से आफ़्स्पा का प्रकोप झेल रहा है और 1990 से कश्मीर भी इससे गुज़र रहा है लेकिन भारत के मुख्य भूभाग के लोगों को इसकी बमुश्किल ही जानकारी होती है। इतिहास की किताबों में कभी भी इन क्षेत्रों का ज़िक्र नहीं आता। इतना ही नहीं भारत के मुख्य भूभाग के लोग उत्तर-पूर्व के लोगों को पृथक करके देखते हैं और उनके प्रति अलगाव का बर्ताव करते हैं। तरह-तरह के अपमानजनक नामों से बुलाते हैं जैसे चिंकी, मोमो, चीनी, नेपाली आदि। इरादतन इन क्षेत्रों के इतिहास से हमें काटकर रखा गया है। हम सत्ता द्वारा परोसी अज्ञानता या पूर्वाग्रहों के शिकार होते हैं। इस अलगाव का फ़ायदा पूँजीवादी राज्यसत्ता उठाती है। इनके साथ होने वाले अत्याचारों से अक्सर अन्य भारतीय बेख़बर होते हैं या ख़बर होती भी है तो ज़्यादा गम्भीरता से नहीं लेते। फ़ासीवादी मोदी सरकार के आने के बाद तो जिस तरह से सेना के नाम पर राजनीति हो रही है उस स्थिति में सेना पर कोई सवाल नहीं उठाया जा सकता, उनके जघन्य अपराधों की क्या ही बात होगी। ज़्यादा से ज़्यादा कुछ मुआवज़ों की घोषणा होती है। क्या न्याय की जगह मुआवज़ा ले सकता है?

2004 में 32 साल की मणिपुर की मनोरमा के साथ बलात्कार और बर्बर हत्या के विरोध में असम राइफ़ल के मुख्यालय के सामाने महिलाओं ने निर्वस्त्र प्रदर्शन किया था। उनकी तख़्तियों पर लिखा था "भारतीय सेना हमारा बलात्कार करती है"। यदि महिलाएँ ऐसा करने को मजबूर होती हैं तो यह किसी भी सरकार के लिए बेहद शर्मनाक बात होती। लेकिन केन्द्र सरकार को कोई शर्म नहीं आयी। तब कांग्रेस की सरकार थी। वहीं हम मज़दूर वर्ग यह समझ सकते हैं और महसूस कर सकते हैं कि कितना आक्रोश और बेचारगी भरी होगी उन महिलाओं में कि उन्हें ऐसा प्रदर्शन करने को मजबूर होना पड़ा।

यह सवाल उठना लाज़िमी है कि आख़िर उत्तर-पूर्व में आफ़्स्पा लगाया ही क्यों गया? उत्तर-पूर्व के इतिहास पर हम लगातार बिगुल के पन्नों पर लिखते आये हैं और लिखते रहेंगे क्योंकि मज़दूर वर्ग जब-तक दमित, उत्पीडित राष्ट्र और राष्ट्रीयताओं के साथ खड़ा नहीं होगा तब-तक उसकी भी मुक्ति सम्भव नहीं है। पूँजीवादी राज्यसत्ता दमित राष्ट्र व राष्ट्रीयताओं के संघर्ष को अवैध ठहराने के लिए अखण्डता का कार्ड खेलती है और अन्धराष्ट्रवाद की लहर में हमें बहा ले जाने का प्रयास करती है। ऐसी कोई भी लहर हमें बाँटने और हमारे बीच पूँजीवादी राजनीति को स्थापित करने का प्रयास होती है। हमें ऐसे प्रयासों को क्रान्तिकारी राजनीति से नाकाम करना चाहिए। वह तब ही हो सकता है जब हम समझें कि, उत्तर-पूर्व हो या कश्मीर, आख़िर वहाँ की जनता का संघर्ष क्या है? और मज़दूर वर्ग का इन संघर्षों के प्रति नज़रिया क्या होना चाहिए?

उत्तर-पूर्व के जनजातीय इलाक़े ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के पहले भारत में शामिल नहीं थे। वैसे तब भी कोई राष्ट्र-राज्य नहीं हुआ करता था। राष्ट्र-राज्य की स्थापना ही पूँजीवाद के साथ होती है। लेकिन आज फ़ासीवादी राजनीति किसी अखण्ड भारतीय राष्ट्र की अवधारणा को अनादि-अनन्त की तरह स्थापित कर पूरे इतिहास को विकृत कर रहे हैं। उनके लिए शिवाजी भी भारत राष्ट्र की रक्षा कर रहे थे और इसी राष्ट्र की हिफ़ाज़त में रानी लक्ष्मी बाई ने बलिदान दिया। राष्ट्र की अवधारण आधुनिक है और पूँजीवाद के साथ इसकी स्थापना हुई है। इसलिए दमित राष्ट्रों का संघर्ष भी बुर्जुआ नेतृत्व में बुर्जुआ राज्य की स्थापना या सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनवादी क्रान्तिके ज़रिए जनता की जनवादी तानाशाही की स्थापना के लिए होता है। राष्ट्र की अवधारणा को समरूप से पूरे इतिहास पर लागू करना और इसके आधार पर काल्पनिक शत्रु का निर्माण फ़ासीवादी विचारधारा का अंग है। राष्ट्रीय प्रश्न पर अधिक जानकारी के लिए इसी पर चली बहस पाठक पढ़ सकते हैं (http://ahwanmag.com/archives/7567)। अभी हम उत्तर-पूर्व की चर्चा पर लौटते हुए वहाँ के इतिहास पर बेहद संक्षिप्त में कुछ राज्यों के उदाहरण से बातें करेंगें ताकि यह स्पष्ट रहे कि किस प्रकार भारत का दमनकारी पूँजीवादी राज्य उत्तर-पूर्व के राष्ट्र और राष्ट्रीयताओं का दमन-उत्पीड़न करता चला आया है और आफ़्स्पा जैसे क़ानून इस दमनतंत्र के हथियार हैं।

नगालैण्ड

भारत-बर्मा सीमा की नगा पहाड़ियों के निवासी बीसवीं सदी से ही नगा राष्ट्रीय परिषद (एनएनसी) के बैनर तले एक साझा मातृभूमि और स्वशासन की माँग को लेकर संघर्ष कर रहे हैं। उन्होंने अपनी माँगें 1929 में साइमन कमीशन के सामने रखी थी। महात्मा गाँधी ने भी उनकी माँगों का समर्थ किया था। ब्रिटिश काल से ही उत्तर-पूर्व को सामरिक और भूराजनीतिक महत्व की दृष्टि से देखा जाता रहा है। हालाँकि चाय बगानों से ब्रिटिश कम्पनियों का फ़ायदा होता था और बाद में पूँजीवादी विकास के साथ भारत सरकार वहाँ से चाय के अलावा पेट्रोलियम, खनिज पदर्थ आदि का दोहन भी करती है। लेकन 1962 के भारत-चीन युद्ध के बाद से ख़ासकर भारत सरकार के लिए भी यह क्षेत्र भूराजनीतिक महत्व का क्षेत्र रहा है। यह भारत चीन के बीच 'बफ़र ज़ोन' का काम करता है। इस क्षेत्र के निवासी ब्रिटिश हुकूमत से आज़ादी के लिए संघर्ष कर रहे थे। लम्बे संघर्ष के दौरान ही ब्रिटिश प्रशासन और एनएनसी के बीच हैदरी समझौता हुआ। इस समझौते के अनुसार नगालैण्ड को दस वर्ष के लिए संरक्षित क्षेत्र का दर्जा दिया गया। नगालैण्ड ने 14 अगस्त 1947 को आज़ादी की घोषणा कर दी। लेकिन नवस्वाधीन भारत के हुक्मरानों ने एक अन्य स्वतंत्रता संघर्ष का गला घोंटकर उसे भारत गणराज्य का हिस्सा घोषित कर दिया गया। 1975 तक नगा राष्ट्रीय परिषद आज़ादी के लिए लड़ती रही। 1975 में भारत के साथ शिमला समझौता करने के बाद एनएनसी को

(पेज 15 पर जारी)

सेना को दमन-उत्पीड़न के असीमित अधिकार देने वाला आफ़्स्पा क़ानून रद्द करो!

(पेज 14 से आगे)

ग़द्दार क़रार दे कर समझौते का विरोध कर रहे अन्य नेताओं ने नेशनल सोशलिस्ट काउन्सिल ऑफ़ नगालैण्ड (नगालैण्ड की राष्ट्रीय समाजवादी परिषद) की स्थापना की और संघर्ष का झण्डा उठाया। आगे चलकर यह भी दो प्रमुख समूहों में बँट गयी, एनएससीएन 'आइजैक मुइवाह' या 'आईएम' और एनएससीएन 'खापलांग'। मुख्यतः एनएससीएन (आईएम) ही सशस्त्र संघर्षों को नेतृत्व देती है।

नगालैण्ड के संघर्षों को पूरी तरह दरकिनार कर, वहाँ की जनता की राय जाने बगैर एकतरफ़ा उसे भारत गणराज्य का हिस्सा बना लेने से वहाँ की जनता में भारतीय राज्य के प्रति घोर अविश्वास की भावना पैदा हुई है साथ ही आफ़्स्पा जैसे क़ानूनों को लागू कर इस अविश्वास की भावना को और पुख़्ता बनाया गया है। समय के साथ प्रशासनिक सहूलियतों को देखते हुए न कि वहाँ की जनता के आकाँक्षाओं का सम्मान करते हुए क्षेत्र में कई प्रशासनिक विभाजन हुए जिसने उनकी नृजातीय संरचना को प्रभावित किया है। दूर राजधानियों में बैठे नेता और अधिकारी काग़ज़ों पर यहाँ की आबादी की नियति तय करते आये हैं। सेना और आफ़्स्पा जैसे काले क़ानूनों की आड़ में इनकी आज़ादी और आत्मनिर्णय की भावना को जितना दबाया गया उनके बीच यह भावना उतनी प्रबल होती गयी तथा प्रतिरोध और अलगाव बढ़ता चला गया।

नगालैण्ड की तरह ही भारत राज्य के साथ मणिपुर, मिज़ोरम और सिक्किम के भी अनुभव कुछ अलग नहीं हैं। उनके साथ भी ऐसी ही धोखाधड़ी, उत्पीड़न और उपेक्षा का इतिहास रहा है।

मणिपुर

मणिपुर में हिजाम इराबोट की प्रभावी और ऊर्जस्वी नेतृत्व में सामन्तवाद और साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ एक शक्तिशाली जनवादी आन्दोलन उभरा जिसकी वजह से अंग्रेज़ों के जाने के बाद मणिपुर संविधान क़ानून पास हुआ। 1947 में लोकतांत्रिक राजशाही स्थापित हुई। भारत सरकार के प्रतिनिधि वी.पी. मेनन ने राज्य में बिगड़ती क़ानून-व्यवस्था का हवाला देकर मणिपुर के राजाबोधचन्द्र सिंह को शिलाँग बुलाया और 21 सितम्बर, 1949 को कपटपूर्ण तरीक़े से भारत में विलय के समझौते पर हस्ताक्षर करा लिया। भारत सरकार ने अपने विशाल भूखण्ड के अहंकार में इतना भी ज़रूरी नहीं समझा कि इस समझौते को नवनिर्वाचित मणिपुर विधान सभा से पारित करवा लें। इतना ही नहीं इस विधान सभा को भंग कर मणिपुर को चीफ़ कमिश्नर के शासन के अन्तर्गत कर दिया गया।

मिज़ोरम

1960 के दशक में असम की लुशई पहाड़ियों में भयंकर आकाल पड़ा। राहत कार्य करने वाली टीम ने दिल्ली में बैठी केन्द्र सरकार से सहायता की गुहार लगाई। लेकिन कान में तेल डाल कर सो रही सरकार ने राहत के नाम पर भीख के कुछ टुकड़े दिये। इस राहत टीम ने अपने को 'मिज़ो राष्ट्रीय मोर्चा' घोषित कर मिज़ोरम की मुक्ति के लिए सशस्त्र संघर्ष की घोषणा कर दी। एम.एन.एफ़ ने 1966 में आईज़ोल शहर पर कब्ज़ा कर लिया था और भारत सरकार ने अपने ही नागरिकों पर पहली बार बमबारी की थी। हफ़्तेभर की लड़ाई के बाद आईज़ोल को भारत सरकार ने वापस अपने क़ब्ज़े में कर लिया था। जनविद्रोह को देखते हुए और दुबारा से ऐसी किसी स्थिति के उठ खेड़े होने से आशंका से बचने के लिए भारत सरकार ने मिज़ो समाज की संरचना को तोड़ते हुए गाँवों को उजाड़कर सड़कों के किनारे बसाया। 1986 में एम.एन.एफ़ ने समझौता कर भारतीय संविधान के दायरे में काम करना स्वीकार कर लिया। लेकिन भारत सरकार की बर्बरता ने मिज़ो जनता में अलगाव और भारत सरकार के प्रति घृणा व प्रतिरोध की भावना को बरक़रार रखा है।

आज़ादी के बाद उत्तर-पूर्व के राज्यों का समय-समय पर पुनर्गठन किया गया लेकिन इन तमाम पुनर्गठनों में महज़ प्रशासकीय सहूलियतों को ध्यान में रखा जाता रहा है जिसकी वजह से कई मामलों में एक ही जनजाति कई राज्यों में बँट गयी और जनजातियों की राष्ट्रीय आकांक्षाएँ कुचल दी गयीं। इस क़िस्म के पुनर्गठन से नये विवाद भी उभरे, जैसे ग्रेटर नगालैण्ड विवाद, नगा-मणिपुर विवाद, असमी-बोडो विवाद आदि। लुशाई पहाड़ियों या नगा पहाड़ियों जैसे कई पहाड़ी इलाक़े हैं जहाँ भिन्न संस्कृति और जीवनशैली वालें विशिष्ट नृजातीय समूह (एथनिक ग्रुप) रहते थे। कभी इस या कभी उस प्रशासनिक इकाइयों में पटक दिये जाने की वजह से उनमें गहरा असन्तोष है जो औपनिवेशिक काल से ही बना हुआ है। आज़ादी के बाद शुरुआती दौर में उत्तर पूर्व को केवल रणनीतिक महत्व के क्षेत्र के तौर पर भारतीय सत्ता लिया करती थी। उसने भी कभी इन नृजातीय समूहों की आकाँक्षाओं को जानने का प्रयास नहीं किया।

पूँजीवादी विकास के साथ ही इस क्षेत्र में भी प्राकृतिक सम्पदा और सस्ती श्रम शक्ति के दोहन की शुरुआत हुई। लेकिन राजनीतिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्तर पर इस क्षेत्र का अलगाव जारी रहा है। अरुणाचल के छात्र नीड़ो की नस्ली हत्या के बाद ग्यारह सदस्यों की एक समिति गठित हुई थी। इस समिति की रिपोर्ट के अनुसार 2005-13 के बीच उत्तर-पूर्व की दो लाख आबादी रोज़गार और शिक्षा की तलाश में दिल्ली आयी। 86 प्रतिशत लोगों ने कहा उनके साथ नस्ली भेदभाव का बर्ताव किया जाता है। दो तिहाई महिलाओं ने छेड़खानी और यौन उत्पीड़न की घटनाओं की बात कही। क्या इस रिपोर्ट और अपने आस-पास उत्तर-पूर्व की आबादी के साथ हो रहे बर्ताव को देख कर हम समझ नहीं सकते कि उनके बीच अलगाव की गहरी भावना होने की वजह क्या है?

आफ़्स्पा जैसे काले क़ानूनों के जरिये बलपूर्वक दमित राष्ट्रों को क़ब्ज़े में रखना और दमित राष्ट्रीयताओं को उनके जनवादी अधिकारों से वंचित रखने के अलावा दमनकारी पूँजीवादी राजनीति दो रास्तों से इन दमित राष्ट्र और राष्ट्रीयताओं के संघर्षों में अपना रास्ता बनाती है ताकि उन्हें कमज़ोर किया जा सके। एक ओर अन्धराष्ट्रवाद की ज़हरीली राजनीति दमित राष्ट्र और राष्ट्रीयताओं के तमाम संघर्षों को दरकिनार कर उन्हें राष्ट्रद्रोही क़रार देती हैं, आतंकवादी बना देती हैं। दूसरे इनके संघर्ष को कमज़ोर करने के लिए, उन्हें दन्तनखविहीन बनाने के लिए अस्मितावादी आन्दोलनों के चक्कर में गोल-गोल घुमाती रहती है। अन्धराष्ट्रवादी या अस्मितावादी राजनीति दमित राष्ट्र या राष्ट्रीयताओं के संघर्ष को प्रभावित कर सकती हैं लेकिन ये मुक्ति संघर्ष को रोक नहीं सकते। मुक्ति हासिल हो या नहीं दमित जनता कभी हार नहीं मानती। किसी नेतृत्व के समझौतापरस्त हो जाने पर नया नेतृत्व पैदा हो जाता है और मुक्ति संघर्ष का बीड़ा नये लोग उठा लेते हैं। जबतक ये संघर्ष किसी मुकाम तक नहीं पहुँचते तबतक इन क्षेत्रों में शान्ति की उम्मीद बेमानी है।

उत्तर-पूर्व और कश्मीर के इतिहास को देखते हुए यह बात एक बार फिर साबित होती है कि साम्राज्यवाद के दौर में दमनकारी राष्ट्र या राष्ट्रों के पूँजीपति वर्ग आम तौर पर अपनी तरफ़ से दमित राष्ट्रों को आत्मनिर्णय का अधिकार और राष्ट्रीयताओं को सुसंगत जनवाद नहीं दे सकते। लेकिन दमित राष्ट्र अपने आत्मनिर्णय व अलग होने के अधिकार प्राप्त करने के लिए दमनकारी राष्ट्र से इन अधिकारों को देने का इन्तज़ार मात्र नहीं करती बल्कि वह राष्ट्रीय मुक्ति के संघर्ष के माध्यम से इन्हें हासिल करने का प्रयास करती हैं और कई मामलों में सफल भी होते हैं। दमित राष्ट्र की जनता यदि विजय हासिल नहीं कर पाती है तो भी वह कभी हार भी नहीं मानती। उनका संघर्ष जारी रहता है जैसे कि उत्तर-पूर्व और कश्मीर का संघर्ष जारी है। मज़दूर वर्ग को इन संघर्षों का समर्थन करना चाहिए क्योंकि क्रन्तिकारी सर्वहारा राजनीति का एक अहम हिस्सा होता है जनवाद के लिए संघर्ष। राष्ट्रीय आत्मनिर्णय की लड़ाई राजनीतिक जनवाद के लिए दमित क़ौमों की लड़ाई है और मज़दूर वर्ग दमित क़ौमों व आम मेहनकश जनता के साथ हर रूप में हो रहे दमन और उत्पीड़न का विरोध करता है।

आज भारत के मज़दूर वर्ग, आम मेहनतकश जनता छात्रों-नौजवानों को भारत की दमित क़ौमों के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष से ख़ुद को जोड़ते हुए उनके राष्ट्रीय आत्मनिर्णय के अधिकार का बिना शर्त समर्थन करना होगा। वहीं भारत में दमित राष्ट्रों के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों को भारतीय राज्यसत्ता के विरुद्ध मज़दूर वर्ग के समाजवादी क्रान्ति के संघर्ष से जुड़ना होगा। दमित राष्ट्रों को भी यह समझना होगा कि भारत की मेहनतकश जनता इस संघर्ष में उनकी शत्रु नहीं, बल्कि दोस्त है। वास्तव में, भारतीय राज्यसत्ता और भारतीय पूँजीपति वर्ग ही हमारा साझा दुश्मन है, यह बात समझना बेहद जरूरी है। सच्चे और सही अर्थों में राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन भी सार्थक और कारगर तरीक़े से तभी आगे भी बढ़ सकते हैं।

मज़दूर वर्ग की पार्टी का प्रचार क्रान्तिकारी प्रचार होता है

(पेज 13 से आगे)

सिखाया जाता। और उनको कम्युनिस्ट दृष्टिकोण से जवाब देना चाहिए, न कि किसी और दृष्टिकोण से। आम मज़दूरों की चेतना उस समय तक सच्ची वर्ग चेतना नहीं बन सकती जब तक कि मज़दूर ठोस और सामयिक (फ़ौरी) राजनीतिक तथ्यों और घटनाओं से दूसरे प्रत्येक सामाजिक वर्ग का उसके बौद्धिक, नैतिक एवं राजनीतिक जीवन की सभी अभिव्यक्तियों में अवलोकन करना नहीं सीखते, जब तक कि मज़दूर आबादी के सभी वर्गों, स्तरों और समूहों के जीवन तथा कार्यों के सभी पहलुओं का भौतिकवादी विश्लेषण और भौतिकवादी मूल्यांकन व्यवहार में इस्तेमाल करना नहीं सीखते।" केवल इसके ज़रिए ही मज़दूर वर्ग छात्रों, किसानों, निम्न बुर्जुआ व अन्य तबकों की आर्थिक प्रकृति और उनके सामाजिक तथा राजनीतिक गुण का स्पष्ट चित्र बना सकते हैं। केवल तभी मज़दूर वर्ग तथा आम मेहनतकश जनता उन नारों और बारीक सूत्रों का मतलब समझ सकते हैं जिनके पीछे प्रत्येक वर्ग और उसका प्रत्येक संस्तर "अपने दिल की बात छिपाता" है। इसे ही लेनिन सर्वांगीण राजनीतिक भण्डाफोड़ कहते हैं जो मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश जनता की क्रान्तिकारी क्रियाशीलता को प्रशिक्षित करने की बुनियादी शर्त है।

हम राजनीतिक प्रचार के सार की बात को संक्षिप्त में समझ चुके हैं। परन्तु मज़दूर पार्टी के प्रचार में इस सार को भी अलग-अलग तौर पर प्रकट किया जाता है। मज़दूर वर्ग की पार्टी के क्रान्तिकारी प्रचार को प्रकट करने के दो प्रकार होते हैं : प्रचारात्मक (प्रोपगेण्डा) और उद्वेलनात्मक (एजिटेशन)। यह कोई दो अलग-अलग प्रचार नहीं है बल्कि एक ही सारतत्व को प्रकट करने के भिन्न तरीक़े हैं। लेनिन प्रचारक और उद्वेलनकर्ता के प्रचार के अन्तर को स्पष्ट करते हैं : अगर "...बेकारी के प्रश्न पर प्रचारक बोलता है, तो उसे आर्थिक संकटों के पूँजीवादी स्वरूप को समझाना चाहिए, उसे बताना चाहिए कि वर्तमान समाज में इस प्रकार के संकटों का आना क्यों अवश्यम्भावी है और इसलिए क्यों इस समाज को समाजवादी समाज में बदलना ज़रूरी है, आदि। सारांश यह कि प्रचारक को जनता के सामने **बहुत-से विचार** पेश करने चाहिए, इतने सारे विचार कि केवल (अपेक्षाकृत) थोड़े-से लोग ही उन्हें एक अविभाज्य और सम्पूर्ण इकाई के रूप में समझ सकेंगे। परन्तु इसी प्रश्न पर जब कोई उद्वेलनकर्ता बोलेगा, तो वह किसी ऐसी बात का उदाहरण देगा, जो सबसे अधिक ज्वलन्त हो और जिसे उसके सुनने वाले सबसे व्यापक रूप से जानते हों – मसलन, भूख से किसी बेरोज़गार मज़दूर के परिवार वालों की मौत, बढ़ती हुई ग़रीबी, आदि – और फिर इस मिसाल का इस्तेमाल करते हुए, जिससे सभी लोग अच्छी तरह परिचित हैं, वह "आम जनता" के सामने बस **एक विचार** रखने की कोशिश करेगा, यानी यह कि यह अन्तरविरोध कितना बेतुका है कि एक तरफ़ तो दौलत और दूसरी तरफ़, ग़रीबी बढ़ती जा रही है। इस घोर अन्याय के विरूद्ध उद्वेलनकर्ता जनता में असन्तोष और ग़ुस्सा पैदा करने की कोशिश करेगा तथा इस अन्तरविरोध का और पूरा स्पष्टीकरण करने का काम वह प्रचारक के लिए छोड़ देगा। अतएव प्रचारक छपी हुई सामग्री का इस्तेमाल करता है और उद्वेलनकर्ता जीवित शब्दों का प्रयोग करता है।"

प्रचारक पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तरविरोध को उसकी समस्त जटिलता में समझाता है और इसलिए ही जनता के सामने विचारों की कड़ियों के ज़रिए पूरी तस्वीर उकेरता है जबकि उद्वेलनकर्ता इस अन्तरविरोध के एक प्रातिनिधिक पहलू को पकड़कर असन्तोष और ग़ुस्सा पैदा करता है।

मज़दूर पार्टी के प्रचार से जुड़ा आख़िरी बिन्दु प्रचार के रूपों का है। मज़दूर वर्ग की पार्टी के प्रचार के तीन रूप होते हैं : व्यक्तिगत रूप से किया गया मौखिक अभियान, राजनीतिक और मज़दूर आन्दोलनों में किया गया प्रचार तथा पत्र-पत्रिकाओं और साहित्य द्वारा किया जाने वाला प्रचार। मज़दूर पार्टी के कार्यकर्ता को प्रचार के इन तीन रूपों में नियम से किसी न किसी प्रचार में भाग लेना ही चाहिए। अगली कड़ी में हम मज़दूर पार्टी द्वारा आम जनता के संघर्षों में भागीदारी और राजनीतिक संघर्ष पर बात करेंगे।

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2020-2022
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर हिमालय की तबाही पर सुप्रीम मुहर

अपूर्व मालवीय

आपने क्रान्तिकारी कवि अवतार सिंह पाश की वह कविता तो पढ़ी ही होगी 'तो हमें देश की सुरक्षा से ख़तरा है'। इस कविता के एक-एक शब्द और पंक्तियों में तो सच्चाई है ही बल्कि इसमें (पाश से माफ़ी के साथ) कुछ पंक्तियाँ और भी जोड़ी जा सकती हैं, जैसे कि

'सुरक्षा के नाम पर
हिमालय और उसके पूरे
पारिस्थितिकी तंत्र की तबाही
और वहाँ की जनता की
ज़िन्दगी को ख़तरे में डालना ही
अगर देश की सुरक्षा होती है
तो वाक़ई हमें देश की सुरक्षा से
ख़तरा है।'

आप सोच रहे होंगे कि ऐसा क्या हो गया कि हिमालय ख़तरे में आ गया! वहाँ की जनता की ज़िन्दगी ख़तरे में आ गयी! दरअसल हिमालय ख़तरे में आया नहीं बल्कि लाया गया है और इसे ख़तरे में डाल रही है मोदी सरकार की वे नीतियाँ जिनसे हिमालय और उसके पूरे पारिस्थितिकी तंत्र का भयंकर नुक़सान होने वाला है। वैसे ये नीतियाँ केवल मोदी सरकार की ही नहीं हैं बल्कि इस मुनाफ़ाख़ोर पूँजीवादी व्यवस्था में कोई भी सरकार इन्हीं नीतियों को ही लागू करेगी, हालाँकि यह काम मोदी सरकार विशेष तेज़ी और वफ़ादारी के साथ कर रही है। आप यह सोच रहे होंगे कि इतना गोल-गोल क्यों घुमाया जा रहा है! हुआ क्या है! चलिए सस्पेंस ख़त्म करके आपको बता ही देते हैं कि हुआ क्या है! 14 दिसम्बर 2021 को सुप्रीम कोर्ट ने मोदी सरकार की उस सिफ़ारिश पर अपनी अनुमति की मोहर लगा दी जिसमें राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर चार धाम राजमार्ग परियोजना की सड़क की चौड़ाई को साढ़े पाँच मीटर से बढ़ाकर दस मीटर करने की माँग की गयी थी। अब आप सोच रहे होंगे कि इसमें ख़तरे वाली कौन-सी बात है! तो आइए आपको बताते हैं कि मामला क्या है! सबसे पहले चार धाम राजमार्ग परियोजना को समझते हैं।

क्या है चार धाम राजमार्ग परियोजना

दिसम्बर 2016 में उत्तराखण्ड के चार धाम यमुनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ और बद्रीनाथ तक ऑल वेदर रोड परियोजना की शुरुआत हुई। इस परियोजना में 900 किलोमीटर की सड़क के साथ 15 पुल, 25 बड़े पुल, 18 यात्री सेवा केन्द्र और 13 बाईपास आदि बनाये जाने हैं। इसी परियोजना का नाम बदलकर चार धाम राजमार्ग परियोजना कर दिया गया। इस परियोजना का उद्देश्य चार धामों को हर मौसम में खुला रखने की थी ताकि कभी भी वहाँ बिना किसी रुकावट के आसानी से जाया जा सके। 12 हज़ार करोड़ की इस परियोजना को 2022 में पूरा हो जाना चाहिए था लेकिन सड़क के चौड़ीकरण में पर्यावरण के मानकों की खुली धज्जियाँ उड़ायी जाने लगीं जिसको लेकर कुछ एन.जी.ओ. और पर्यावरणविद पहले एन.जी.टी. (नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल) और बाद में सुप्रीम कोर्ट चले गये।

सुप्रीम कोर्ट ने परियोजना के पर्यावरण पर सम्भावित प्रभावों की जाँच के लिए अगस्त 2018 में एक हाई पावर कमेटी (एच.पी.सी.) का गठन किया। जुलाई 2020 में एच.पी.सी. ने अपनी रिपोर्ट सौंपी और स्वीकार किया कि परियोजना ने पहले ही अवैज्ञानिक और अनियोजित होने के कारण हिमालय की पारिस्थितिकी को नुक़सान पहुँचाया है। पहाड़ की लम्बवत कटौती की वजह से सड़क खिसकने का ख़तरा बहुत बढ़ गया है और 2020 से पहले चार महीनों में सड़क खिसकने की 11 घटनाएँ हुई हैं। यानी लगभग हर हफ़्ते एक घटना। मलबे के ग़लत निबटान के कारण मलबा नदियों में चला जाता है जिससे नदियाँ रुक जाती हैं। निर्माण कार्य में उठने वाली धूल को नीचे बैठाने के लिए पानी छिड़कने के बहुत कम प्रयास हुए हैं। उच्च हिमालयी इलाक़ों में ट्रैफ़िक के कारण बढ़ने वाले प्रदूषण की निगरानी की कोई व्यवस्था नहीं है।

इसके साथ ही पिछले दिनों इस परियोजना के अनियोजित कटाव और विस्फोटों के कारण बहुत सारे भूस्खलन ज़ोन बने हैं जिसका ख़ामियाज़ा अभी हाल में हुई मानसूनी बारिश के कारण बाढ़ और भूस्खलन में यहाँ की आम आबादी को अपनी जान और माल की हानि से चुकाना पड़ा है। पहाड़ के कटाव के कारण बहुत सारे प्राकृतिक जलस्रोत बन्द हो गये हैं और वहाँ की ग्रामीण आबादी पानी की क़िल्लत से लगातार जूझ रही है।

कैसे दिसम्बर 2020 में राष्ट्रीय सुरक्षा ख़तरे में पड़ी

एच.पी.सी. में सड़क की चौड़ाई के सन्दर्भ में सहमति नहीं बन पाने के कारण दो रिपोर्टें सौंपी गयी थीं। एच.पी.सी. के 21 सदस्य सड़क की 12 मीटर चौड़ाई के पक्ष में थे और बहुत ही कम सदस्य सड़क को 5.5 मीटर चौड़ा ही रखना चाहते थे। सितम्बर 2020 में सुप्रीम कोर्ट ने कम सदस्यों वाली दी गयी सिफ़ारिशों को लागू करते हुए सड़क 5.5 मीटर चौड़ी रखने की ही अनुमति दी। यह अनुमति सड़क परिवहन एवं राजमार्ग मंत्रालय के मार्च 2018 के दिशा-निर्देशों के आधार पर थी। सितम्बर 2020 में ये फ़ैसला आने के बाद दिसम्बर 2020 में सड़क परिवहन एवं राजमार्ग मंत्रालय ने इन दिशा-निर्देशों में बदलाव कर दिया। इस बदलाव में सड़क की चौड़ाई 10 मीटर कर दी गयी। इसके बाद केन्द्र सरकार ने सुप्रीम कोर्ट से अपने 5.5 मीटर की चौड़ाई वाले फ़ैसले को बदलने की अपील की और सड़क की चौड़ाई 10 मीटर करने की अनुमति माँगी। जिसपर इसका विरोध किया गया।

सड़क को ज़्यादा चौड़ी करने का मतलब है कि ज़्यादा मात्रा में पेड़ और पहाड़ को काटना, ज़्यादा मलबा और हिमालय में उसके पारिस्थितिकी तंत्र को ज़्यादा नुक़सान होना! और तभी राष्ट्रीय सुरक्षा ख़तरे में पड़ गयी!

सरकार के रक्षा मंत्रालय द्वारा चौड़ी सड़क की माँग का प्रस्ताव आ गया और यह कहा गया कि चार धाम राजमार्ग परियोजना सामरिक रणनीतिक दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। चीन से मिल रही चुनौती को देखते हुए सेना को अपने सैन्य साजो-सामान, युद्ध उपकरण, टैंक और मिसाइलें आदि ले जाने के लिए ज़्यादा चौड़ी सड़क की ज़रूरत है। अटार्नी जनरल ने कहा कि "अगर भूस्खलन होता है तो सेना उससे निपट लेगी। हम ख़तरे में हैं और जो हम कर सकते हैं हमें करना होगा।" और जब सड़क की चौड़ाई का मामला देश की सेना और रक्षा से जुड़ जाये तो सुप्रीम कोर्ट भला उसपर क्यों रोक लगायेगी! भले ही पर्यावरण का चाहे कितना ही विनाश हो जाये!

आख़िर इतनी तीन तिकड़म क्यों?

मज़ेदार बात तो यह है कि देश की सुरक्षा के नाम पर जिस सड़क को बनाने और चौड़ी करने का प्रस्ताव रक्षा मंत्रालय दे रहा है 2020 के पहले उसी रक्षा मंत्रालय के उच्चाधिकारी सीमा पर सड़क न बनाये जाने के पक्षधर थे और उनका यह कहना था कि बेहतर सड़क होने से चीन को घुसपैठ करने में आसानी हो सकती है। दो साल पहले थल सेनाध्यक्ष विपिन रावत का ही यह बयान आया था कि सड़क की वर्तमान चौड़ाई सेना के आवागमन के लिए पर्याप्त है। आज भारतीय सेना इतनी सक्षम है कि वो भारी से भारी और बड़ी से बड़ी युद्धक सामग्री को हवाई मार्ग से आसानी से ले जा सकती है। वैसे तो चीन-भारत सीमा विवाद का इस्तेमाल भारत की पूँजीवादी सरकारें अपने देश में और चीन की पूँजीवादी-साम्राज्यवादी सरकार अपने देश में जनता के बीच अन्धराष्ट्रवादी लहर भड़काने और अपने क्षेत्रीय विस्तारवादी मंसूबों को पूरा करने के लिए करती रही हैं। वास्तव में, मेहनतकश जनता को ख़तरा मूलतः और मुख्यतः अपने शासक वर्ग से होता है।

ख़ैर, तब सवाल यह है कि आख़िर मोदी सरकार सड़क को चौड़ा करने के लिए इतना तीन तिकड़म क्यों लगा रही है? इस सवाल का जवाब छिपा है सड़क परिवहन एवं राजमार्ग मंत्रालय के उस क़ानून में जिसमें यह कहा गया है कि दस मीटर से कम चौड़ी सड़कों पर कोई टोल टैक्स नहीं वसूला जा सकता। मोदी सरकार ने इस परियोजना के पर्यावरणीय प्रभाव के मूल्यांकन से बचाव के लिए भी एक तिकड़म लगायी है। 900 किलोमीटर की इस चार धाम परियोजना को सौ किलोमीटर से छोटी तिरपन परियोजनाओं में बाँट दिया गया है ताकि पर्यावरणीय प्रभाव के आकलन की ज़रूरत ही न पड़े। सौ किलोमीटर से बड़ी परियोजनाओं के लिए ही पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव का आकलन करना ज़रूरी होता है।

अपने मुनाफ़े और कारपोरेट के हित के लिए ये सरकारें पूरे हिमालय को तबाह करने पर तुली हुई हैं। हिमालय जैसे संवेदनशील ईको सेंसिटिव ज़ोन में किसी भी बड़ी परियोजना के ख़तरे को लेकर भूवैज्ञानिक और पर्यावरणविद् लगातार चेतावनी देते रहे हैं। इन परियोजनाओं के कारण अगर भविष्य में कोई बड़ी आपदा आती है तो उसकी सबसे बड़ी क़ीमत आम जनता को ही चुकानी है।

"स्त्री सशक्तिकरण" के नाम पर स्त्रियों की स्वायत्तता और अधिकारों पर मोदी सरकार का एक और हमला!

बीते 15 दिसम्बर को मोदी सरकार एक नया बिल लेकर आयी है जिसके मुताबिक़ महिलाओं की शादी की न्यूनतम उम्र क़ानूनी तौर पर 21 वर्ष करने का प्रस्ताव है। "स्त्रियों के सशक्तिकरण" और "प्रगतिशीलता" की तरफ़ बताया जा रहा यह क़दम दरअसल महिलाओं की स्वायत्तता और अधिकारों पर हमला है। यह फ़ासिस्ट हुकूमत द्वारा स्त्रियों द्वारा अपने जीवन का फ़ैसला करने का अधिकार छीनने की क़ानूनी परियोजना है।

असल सवाल तो यह उठता है कि 18 साल का होने पर अगर कोई व्यक्ति अपने देश की सरकार चुनने का फ़ैसला ले सकता है तो उसे अपनी ज़िन्दगी के भी फ़ैसले लेने का अधिकार क्यों नहीं होना चाहिए? 18 साल का होने के बाद लड़के व लड़कियों दोनों के लिए अपनी ज़िन्दगी के फ़ैसले लेने की आज़ादी होनी चाहिए, इसमें उम्र की सीमा तय करके सरकार का हस्तक्षेप करना बिल्कुल ग़लत है और नागरिकों के निजी जीवन और सम्बन्धों में ग़ैर-ज़रूरी राजकीय दख़लअन्दाज़ी है।

स्त्रियों के प्रति इस सरकार का रवैया पहले से ही दिन के उजाले की तरह साफ़ है। "बेटी बचाओ" से लेकर "महिला सशक्तिकरण" की सच्चाई से हम सभी भली-भाँति परिचित भी हैं! इस क़ानून के ज़रिए दरअसल मोदी सरकार वयस्क स्त्रियों से उनके चुनने का अधिकार छीनने की तैयारी में है। सोचने-समझने वाली स्वतंत्र स्त्रियों से फ़ासिस्ट वैसे भी ख़ौफ़ज़दा रहते हैं।

जो लोग यह तर्क दे रहे हैं कि शादी की उम्र क़ानूनन बढ़ने से बाल विवाह पर रोक लगेगी, उन्हें पहले बाल विवाह के असल कारणों को समझ लेना चाहिए। शादी की उम्र बढ़ाने से अगर बाल विवाह पर रोक लगनी होती तो जब 1978 में लड़कियों की शादी की उम्र 16 वर्ष से बढ़ाकर 18 वर्ष की गयी थी तो उसके 43 सालों बाद आज बाल विवाह ख़त्म हो जाना चाहिए था लेकिन असलियत तो यह है कि आज भी हमारे समाज मे बाल विवाह की दर 23 फ़ीसदी है। ख़ुद सरकार के राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वे की एक रिपोर्ट के अनुसार इसके पीछे मूल कारण शादी की उम्र का कम होना नहीं है बल्कि समाज में भयंकर रूप से व्याप्त ग़रीबी,अशिक्षा और पितृसत्तात्मक मूल्य-मान्यताएँ हैं।

18 साल का होने पर अगर एक व्यक्ति देश का भविष्य तय करने में अपनी भूमिका निभा सकता है तो उसे अपनी ज़िन्दगी के फ़ैसले लेने से रोकना उसके जनवादी अधिकार पर हमला है।

हम यह माँग करते है कि व्यस्क स्त्रियों के लिए शादी की उम्र सीमा 21 वर्ष करने के इस स्त्री-विरोधी प्रस्ताव को तत्काल वापस लिया जाये और सभी वयस्कों के लिए इस सीमा को 18 वर्ष किया जाये।

मूल बात तो यह है कि जब तक यह मुनाफ़ाख़ोर पूँजीवादी व्यवस्था और इसके साथ पितृसत्ता का अपवित्र गठजोड़ क़ायम है, तब तक स्त्रियों के सशक्तिकरण और आज़ादी की कोई भी बात आधी-अधूरी ही हो सकती है। स्त्रियों की असल आज़ादी के लिए हमें एक समतामूलक समाज के निर्माण के लिए आगे आना होगा।

– गार्गी

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006